कला का अनुवाद

लेखक की अन्य कृतियाँ

- श्रीकृष्णार्जुन युद्ध
- हिमकिरीटनी
- साहित्यदेवता
- हिमतरंगिनी
- माता
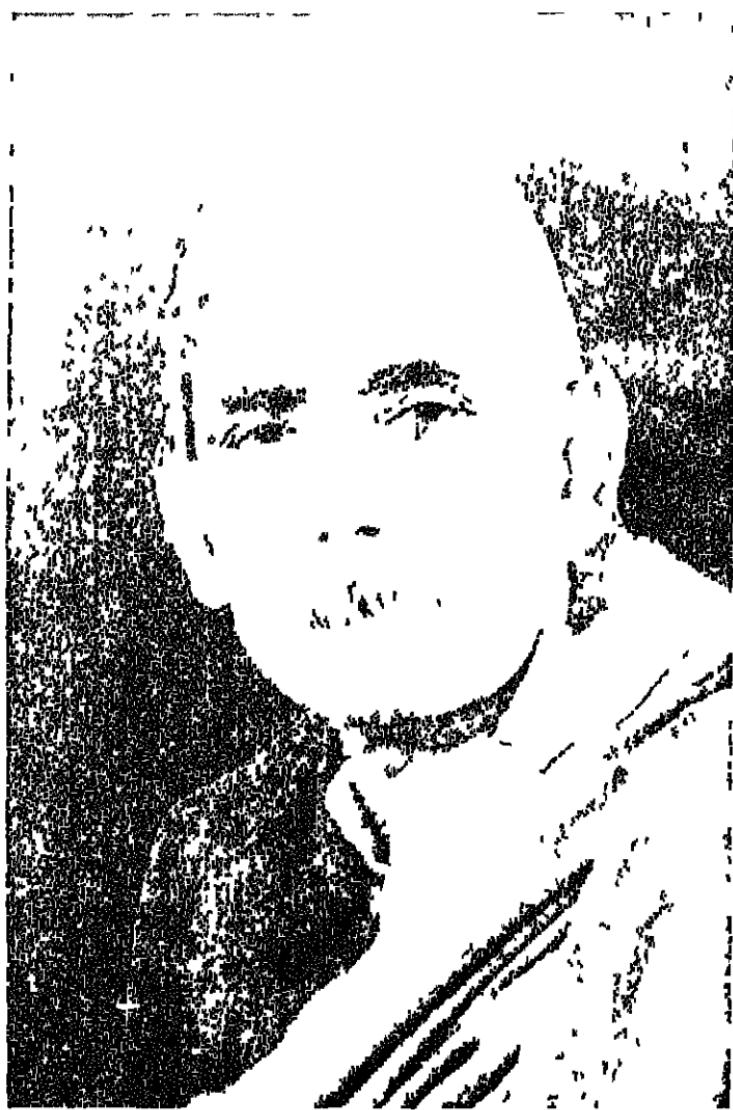
माखनलाल चतुर्वेदी

कला का अनुवाद

[कहानी-संग्रह]

माखनलाल चतुर्वेदी

गोरखपुर
विश्वविद्यालय प्रकाशन
१९५४

मूल्य सवा दो रुपया

मुद्रक
प० पृथ्वीनाथ भार्गव,
भार्गव भूषण प्रेस, गायघाट, बनारस

भारतीय आत्मा साहित्य–६

कहानी संग्रह–१

भारतीय साहित्य प्रकाशन, खण्डवा के लिए

प्रकाशक तथा विक्रेता

विश्वविद्यालय प्रकाशन

नखास चौक, गोरखपुर

क्रम

कच्चा रास्ता

गाडी ढचर-ढचर चली जा रही थी। देहाती रास्ता था। कच्चा। तिस पर पहाडी। पक्की सडको पर एक दु ख। सडक पर पिटे हुये पत्थर गाडी के पहिये के लोहे के पट्टे के सघर्ष से, कुहराम-सा मचाते हे। मिट्टी के कच्चे रास्ते पर चलनेवाले धक्के, ऐसे जाते हे, मानो मिट्टी पर बिछी हुई मखमल पर से गुजरते हो। पेट का पानी भी नही हिलता। और पक्की सडको पर तो बैल-गाडी या घोडा-गाडी के राहगीर के पेट के जोड मानो उछल-उछल कर खोलने लगते हे। शायद इसीलिये सघर्ष को गति का जनक, और सुविधा को मरण-समाधि बताया जाता है। खैर। किन्तु कच्चे रास्ते मे एक ही खराबी। खन्दक, खाई, गढा, टीला, ऊँचक नीचक जगहे, बेहूदा घुमाव, और 'एचैक पेचा' चढाव आदि। बैल जब धीरे चलने लगते है, तब हॉकने-वाला टट्-टट् की एक ऐसी आवाज करता है, जिसे हॉकने की आवाज ही कहते हे। किन्तु अपनी सम्पूर्णता का दावा रखकर भी, वर्णमाला, उस स्वर के लिखने मे असमर्थ मालूम होती है। हा तो वह स्वर, यह टट् टट्, जुते बैलो के धीमा पडते ही, उन्हे मानो शीघ्र चलने की याद दिलाता है, और यह चेतावनी भी है, कि अब भी न चेते, तो हॉकनी

का सटाका पडा। और तिस पर हॉकनी की वह 'आर'। वह कीला, जो बैलो के हॉकने के लिये, लकडी के डडे पर निकला रहता है। यह अग्रेजी के 'आर' अक्षर की आकृति नही है। यह तो उर्दू का 'अलिफ', अग्रेजी का 'आई' और हिन्दी के 'ा' की मात्रा है। इसका नाम न जाने किसने 'आर' रखा। मालूम होता है, बैलो के काधो पर रखे-रखे घिस जानेवाले जूडे की तरह इस औजारिन का भी आधा भाग घिस गया। चूकि, बैल के कूले पर गडते ही, दयालु भारतवर्ष के धर्म-प्राण लोगो का नाम-सा लिखती हुई, जो रक्तधारा निकलती है, वह, उस कीले के, बैल के चमडे के आरपार होने के कारण ही निकलती है। अत इसका नाम किसी दिन 'आरपार' ही रहा होगा। आर नही।

इसी तरह दिहाती कच्चे रास्ते के सुख-वस्तु यात्रियो के लिये, जो सकट-सप्तक टीलो आदि का मैने गिनाया है, उनमे कुछ तो मानो कच्चे रास्ते की टट्-टट् है, जिससे यात्री को सजगता और सावधानी दी जाती हैं। और कुछ कठिन है, आरे। किन्तु प्रकृति कितना भी कहो, तो क्रूरता मे मनुष्य से बाजी नही ले जा सकती। मनुष्य की 'आर' तो बस मनुष्य की ही आर है। उसकी दृष्टि मे 'आर'। उसकी इच्छा मे 'आर'। उसकी महत्वाकाक्षा मे 'आर' और उसकी हॉकनी मे तो आर है ही।

तुक पर तुक यो मिली कि गाडी ढचर-ढचर चली जा रही थी। रामधन गाडी हॉक रहा था। मै गाडी मे बैठने का कष्ट उठाये हुये था। बैल कॉधे के बल गाडी घसीटते, और पॉवो के बल दौडते थे। रामधन आँखो के बल झुककर कभी चकील (गाडी के चक्के की कील), कभी लोहे के पट्टे और कभी जूडी के पास लगे धुरकीले को देखता। गो-माता के दोनो पुत्रो को कभी ललकार से, कभी लात से, और कभी हॉकने की लाठी से मारता जाता। मै भी बेकार न था।

बैलों के पैर, और रामधन का हाथ 'चाल' था, तो मेरा सिर चल रहा था। और जिस तरह गाडी के रास्ते मे ऊँचे-से-ऊँचे टीले, नीची-से-नीची खाइयाँ थी, वैसे ही मेरे सिर के चलने के रास्ते मे मनोविकारो के सकट पड रहे थे। अन्तर इतना ही था कि रामधन के जगली रास्ते मे मार्ग मे पत्तो के तोरण लगे थे, सारस की कतारे चलते-फिरते तोरण चला रही थी—और मुझे बडा अचरज हुआ, जब प्रकृति के कौशलो पर, मेरी कभी मुँदी और कभी खुली नजर पड गई। बहते हुए बादलो पर बिना धुले, और दौडते हुए बादलो के साथ बिना भागे, स्थिर इन्द्र धनुष बरसात मे कायम! और इस रूखे मे नीले आसमान के पृष्ठ भाग पर, समस्त हरियाली के ऊपर, ये दूध के-से सफेद पाँखोवाले, खूब खुले, नये धुले, और हर घडी बिजली के-से क्रम से हिलते-डुलते थे, कतार बँधे सारस दल के तोरण! किन्तु दिमाग के आसमान मे, जब मै देखता तो अनेक इरादो के बाद भी जुकाम की दुर्गन्ध थी ही!

मै तो इस तरह आसमान पर ही था, कि जमीन पर, एक नाले के कीच मे गाडी धँस गयी। रामधन ने—तुझे मरई खा जाय, तुझे बाघ खाय, तेरी माँ, तेरी बहन—क्या क्या 'स्तोत्रपाठ' नही किये! गऊ-माता से अपना रिश्ता मानते हुए, ये गालियाँ कहाँ बैठती थी, इसकी ओर रामधन का ध्यान कहाँ! इस समय तो वह योगियो की-सी धुन से समस्त शक्ति लगाकर बैलो की पूँछे मरोर रहा था, मानो उन्ही की 'दुम मरोर' की तरणी पर हम कीचवाले नाले की बैतरणी पार करनेवाले थे।

इस समय के वे पन्द्रह मिनट। पहले मुझे रामधन पर क्रोध आया कि वह गऊ के जाये गूँगे जानवरो पर इतनी सख्ती क्यो कर रहा है। किन्तु इतने ही मे मेरा शहराती जाग पडा, जो धर्मोपदेशो,

पुस्तकीय ज्ञानो, और महिमा के आडबर के नीचे सोया हुआ था। अभी तक मै रास्तो पर जा रहा था, किन्तु शहरातीवाला 'मै' जागा कि मेरी साँसे घडी के सेकेडवाले काँटे के साथ घूम उठी। मैने रामधन से कहा––

"पैसा लेकर, यह हरामखोरी! तुम टिट् टिट् कर तमाशा कर रहे हो। और मेरा वक्त निकला जा रहा!

"तुम जगली क्या जानो, कि मेरे वक्त की कितनी कीमत है। रेल निकल गइ तो फिर एक पैसा न दूँगा। सो जूते दूँगा ऊपर से, सो अलग!"

"और सभा भी क्या ऐसी वैसी है। खास वर्किंग कमेटी की बैठक है। अफसोस, पाजियो, हम तो तुम किसानो के लिये मरे-खपे, प्रस्ताव और उप-प्रस्ताव पास करे, और उनके लिये लम्बे-लम्बे भाषण करके आसमान कम्पित करे, और तुम हमे कीचड के घाट लाकर खडा करदो!" कि इतने मे दूसरा मिनट हुआ, और मैने रामधन से कहा––"ले यह डडा और लगा साले बैल की पीठ मे तान कर!"

अब रामधन की भी वाचा टूटी। बोला––"हूजूर, यह मेरे घर का ही बछडा है। मैने इसे बेटे जैसा पाला है। मुझसे तो यह डडा न मारा जायगा। आपने जो कल अपने मामा के यहाँ कबरी गाय देखी थी, जिस पर आप प्यार से हाथ फेर रहे थे, वह इसी की माँ है। इसी का दूध आपने कल खाया था। मैने ही वह गाय आपके मामा जी को दी––"

मेरा धीरज छूटा। मैने कहा "लाट साहब के बेटे मुझे तेरे व्याख्यान की जरूरत नही है।" इतना कहकर मैने जोर से डडा

ताना और दिया कीच मे फसे हुए बैल की पीठ पर। और जूडी की रस्सी तोडकर बैल नाले के उस पार।

मैने फिर रामधन मे चिढकर कहा "अब क्या तेरा बाप गाडी खीचेगा" और वही डडा रामधन के सिर पर ताना।

रामधन ने फिर कहा—मेरा बाप नही गरीब परवर! मेरा बेटा ही गाडी खीचेगा। उधर बैल रस्सी तुडाकर कुछ भागता-सा जा रहा था। वह चौक नही दौड रहा था, किन्तु वह चल भी नही रहा था। दौड ही रहा था। रामधन ने आवाज लगाई मोहन ओ मोहन! और बैल ठिठककर खडा हो गया और घूमकर देखने लगा। मानो वाणी से बँधा सिपाही है, और सेनापति की आज्ञा की प्रतीक्षा कर रहा है।

गाँधी टोपी से ढके मेरे साहबी स्वभाव मे कुछ उतार आया। मै देखकर चौका कि क्या बैल, मानव की बोली पर इतना सावधान! पर मेरे प्राण तो घडी मे थे। मैने कहा—"जल्दी ला बे! जोत उसे, और चला गाडी।"

रामधन ने जूडे की टूटी हुई चमडे की रस्सी, गाडी मे, बाँधी, टूटा हुआ जोत जोडा, टूटा हुआ सैल, कुल्हाडी से हरे झाड की टहनी काटकर नया बनाया, और दूर खडे हुये मोहना को मनाने चला गया।

मोहना की रस्सी जब रामधन खीचता, अब वह आगे आने को तैयार न था, यह उसका पीछे का खिचाव साफ कह रहा था। किन्तु रामधन ने धीमे से पुचकारा, उसकी पीठ पर हाथ फेरा, और मोहन, धीरे-धीरे चला आया। रस्सी भी रामधन ने छोड दी थी, वह ज़मीन पर घिसटती चली आ रही थी। और रामधन दौडकर, कीच मे आगे आ गया, उसने अपने दूसरे बैल को, जिसे वह कामला कहता था, खोलकर मोहना की जगह पर जोता, और मोहना को कामला की जगह पर।

मैने पूछा, क्या बैल भी कॉपते है रे रमधनवा !

इस समय रामधन, जरा देर कर के,—मानो होश मे न हो,—बोला हॉ सरकार। जब इनको भूख प्यास लगती है हुजूर, तो कँप कँपी क्यो न आयेगी। और उसने गाडी के चक्के का लोहा, पार पकडकर जोर से खीचा, और गाडी चलने लगी !

इस समय, चूँकि घडी मुझे डरा रही थी, कि शायद परासिया स्टेशन पर रेलगाडी मुझे नही मिलेगी। अत मेरा सिर आसमान का सोचना छोडकर, जमीन पर उतर आया था। उधर, नालो के उस पार तक बाते करता, बैलो को लाते और हॉकनियॉ मारता हुआ और चिल्लाता हुआ रामधन अब मौन था।

मैने पूछा स्टेशन कितनी दूर है रे।

रामधन बोला—यह क्या सामने रेल के डब्बे दीख रहे है।

यहॉ से कितनी दूर पडेगा।

कोई आधा कोस।

आधा कोस? अरे बाप रे, अरे गाडी आने को तो सिर्फ २० मिनट रह गये है।

अब मुझसे फिर न रहा गया। तुम्हारे सारे गाडी-बैलो मे आग लगाकर गॉवो मे तो मोटरे ही चलनी चाहिये। महात्मा गाधी गॉवो में आकर देखे कि कैसे मूर्खो से और कैसे मुश्किलो से काम पडता है, तब उन्हे पता चले। अब अगर गाडी नही मिली तो बच्चू—

रामधन ने शायद मेरा क्रोध शान्त करने और विषय बदलने के लिये पूछा—

सुराज मिलने मे कितने दिन और है सरकार !

मै तो क्रोध मे था ही—बोला, तुम जैसे तकलीफ देनेवाले लोग रहे, तो हम क्यो स्वराज्य के लिये मरे-खपे। वह ले सिगल हो गया !

रामधन ने, बैलो की पीठ पर धक्का दिया और वे भागने लगे ?

रामधन ने फिर पूछा—सुराज मे सरकार सब आपई (ही) जमे कपडे पहिनते होगे !

हाँ,—तुम लोगो को भी महात्मा गाधी की आज्ञा से खादी पहिनना चाहिये ।'—मैने उत्तर दिया ।

'अच्छा सरकार' रामधन ने कहा । और फिर पूछा—हुजूर आपई जैसे बडे आदमी सुराज मे होयँगे ?

मेने कहा—हाँ, तभी तो अग्रेज सरकार, स्वराज वालो से डरती है । देखा नही, कल की सभा मे, वो पुलीस इस्पेक्टर आकर कितना झुककर सलाम करता था ।

रामधन ने कहा—'हाँ सरकार' और चुप हो गया । कि इतने ही मे स्टेशन की बस्ती की सडक पर, एक राहगीर सेठ ने कहा— "दीखता नही है बे गाडीवाले अन्धे, ऊपर ही चढाये चला आ रहा हे ।"

"गाडी तो सडक पर ही है सरकार । और मै बैलो को खूब थामे हुए हूँ । आप निकल जायँ ।"

वे थे सेठ शिवदयाल जी । उनकी नजर मुझ पर पड गई । आकर गाडी मे, लिहाफ के नीचे सुरक्षित मेरे चरणो पर,' लिहाफ के ऊपर से ही मत्था रख दिया ।

स्टेशन आया । किराये चौदह आने ठहरे थे । मेने रामधन को तीन चौवन्नियाँ निकाल कर दी ।

उसने कहा—ये बारह आने कैसे ?

मैने उनमे एक दोअन्नी और मिलादी । और कहा ले ।

रामधन बोला नही सरकार, पैसे नही चाहिये । यो भी तो हम लोग, बेगार में आते ही है ।

मैने इसे रामधन की नम्रता समझी। बोला—यह कुरता लेजा। खादी का है। दो-एक जगह फटा है, सो सिलवा लेना। तेरे पास हमारी याददाश्त रहेगी।

रामधन बोला नही सरकार, बकरियाँ बाघम्बर पहिने तो अच्छी नही लगती ! ये तो आप बडे आदमियो को ही शोभते है।

तब मैने पूछा, तुझे हमारे आने की याद कैसे रहेगी—

रामधन आँखो मे आसू भरकर, अपने मोहना बैल की पीठ पर उस जगह हाथ फेरने लगा, जहाँ मेरा डडा पडा था।

लोग खूब एकत्र हो गये थे। और एक दो सूत की तथा फूलो की माला मेरे गले मे पड चुकी थी !

जगदेव शर्मा ने, लोगो को सम्बोधित कर कहा—"देखिये, गाडी-वाले किसान की अपने नेता के प्रति भक्ति, कि वह बज्जरवाडे का रामधन भोई, किराये के पैसे नही नेता और भक्ति से उसकी आँखे आँसुओ से भरी हुई है।

लोगो ने एक स्वर मे चिल्ला कर कहा—

"महात्मा गाधी की जय !"

नवेली मेहमानिन !

उस दिन न जाने कैसे मेरी तबीयत चल गई । जिस तरह तुम अपनी लिखी गई कविता को छिपा लिया करती हो, कुछ समझकर और शायद कुछ बे-समझे, और समझना तो कठिन है कि क्यो ? उसी तरह, मैने उसे चुपचाप पहिले कुरसी पर विभूषित किया ।

मेरा मन कहता था कि तुम गैरहाजिर हो, और तुम्हारी अनुपस्थिति मे, मुझे घर मे ऐसी किसी अनजान चीज को जगह न देनी चाहिये ।

पर यह भी क्या कोई अपराध है ? जब मै और तुम, खलिहान प्रसाद पटवारी के पीपल के पेड के नीचे, उस दिन यानी पहिले दिन मिले, उस दिन हम तुम भी थे, एक दूसरे से बेपहिचान थे । शादी तो बाद मे हुई ।

और यह जो रम्मू तुम अपनी गोद मे लिये घूमती हो, यही कौन मेरे और तुम्हारे बाप दादो से परिचित था, आज न जाने किस लोक से तुम्हारी गोद मे आ बैठा है ।

कवि का तो अपरिचित विचार, मौलिक कहलाता है ! तुम्ही ने न, अपने एक गोरखपुर के भाषण मे कहा था ?

सो, इस देवी का, मेरे घर मे, तुम्हारी गैरहाजिरी मे भी पधा-रना, मौलिक तो माना ही जाना चाहिये ।

मौलिकता की एक शर्त शायद सुन्दरता भी हो । सो ये देवी विमल शुभ्र-वसना और ऐसी नपी–तुली गठन की है, कि तुम न हुई, नही तो तुमने जरूर, 'नवागन्तुक से' शीर्षक एक कविता ही लिखी होती ।

हाँ तो ये आई है । 'मुँह-लगापन' जरा इनमे ज्यादा है । शायद यह स्वभाव तुम्हे पसन्द न हो, किन्तु तुम्हारे कवि-जीवन के रिटायरिग नेचर मे और नेता–जीवन के अभिनेतापन मे, जो मुँह का बनाना, एकान्त मे बैठना और सैर–सपाटे लगाना है, उसमे इनका मुँह लग जाने का स्वभाव, बहुत भायेगा ।

तुम्हारा काल तो अनत ठहरा । वह तो कवियों का अनत है । पर मै तो गरीब इन्सान नामक जानवर हुँ । मेरे सुबह, दोपहर और शाम के बाद रात भी होती है । मेरी उम्र के बरस होते है, वरस के महीने, महीनो के दिन, दिन के घण्टे और घण्टे भी टुकडे-टुकडे मे बँटे होते है ।

मै मृत हूँ, मुझे मृत साथी ही भाता भी है । अकर्मण्य, यानी दुनियाबी कामो मे लगा । तुम अमर हो, अमराई का एकान्त तुम्ही को शोभता भी है । उस समय मेरा भी एक साथी हो, तो तुम्हे क्यो नाराजी होवे ?

गत दिसम्बर सन्, ३६ मे, हम तुम लडे, तब तुमने कहा था—

"बहुत दूरी से—अपने पारिवारिक और आत्मीयता के आकर्षण छोड कर, जो तरुणियाँ अपना जीवन सौपती है, उन पर टूट पडने के बजाय, उनका आदर करना चाहिये—तुम तो बस न जाने कैसे हो !"

और मैने कान पकडकर यह बात मान ली थी। अब इन नवागन्तुका के आने पर, तुम भी मानलो मै तुम्हारे सदुपदेश की रिपोर्ट करता (दुहराता) हूँ। ये भी बहुत दूर से आई है। शुक्ल वर्ण है, गुण-मयी है, मधुरा है, प्रियदर्शिनी है, कोमला है--गुणों की इनमे ऐसी रेल-पेल है कि मै इन्हे अपने घर रहने भी न दू तो तुम मनाकर इन्हे अपने घर रखोगी। तब मेरे विश्राम के दो साधन हो जाँयगे सकट के दोस्त भी स्नेह के दो हिस्सेदार।

हाँ, न जाने तुम्हारे अमर प्रेम मे, इनके ओठो पर अपने ओठ रखना मजूर हो न हो ?

तुम्हारे ओठो पर रखे जाने वाले मेरे ओठ, क्या किसी के साथ वैसी ही गुस्ताखी करने के हकदार नही ?

तब, जब मै तुम्हे, वाल्ट-व्हिटमन की कविता पुस्तक के पन्ने चूमते, चुपचाप खिडकियो से देख लेता हूँ, तब मुझे भी क्रोध आना चाहिये--मेरा भी तो उस समय 'इन्सल्ट' होना है ? जरा इन्साफ से बोलो ।

और वह दो बाप का लौडा--अहीर वाला यदुवशी। जिसे भगवान् कहकर लोग भौडी गाली भी देते है, और फिर उसको ईश्वर समझ कर, पूजने का पाखण्ड भी करते है वे जनाब तो आठो पहर, बाँसुरी के ओठो पर, अपने ओठ रखे रहते, तब भी झक मार कर गोपियाँ, उन्ही अहीर-नन्दन को पुष्प-हीरक पहिनाने, और अपने ओठ उसके ओठो पर सहलाने ललचती।

जब ओठ पर ओठ रखना इतना पुराना है कि 'कृष्णस्तु भगवान स्वय' से शुरू होता है, तब तो वह 'स-शास्त्र' हो गया। सो यदि मैने, तुम्हारे अपने मैके से, यहाँ आने के पहिले ही, इन नवागन्तुका के ओठो को अपने ओठो के बीच ले लिया, तो मुझे आशा है, तुम मुझ पर नाराज न होगी ।

हाँ एक बात के लिये तुमसे साफ-साफ कह देना अच्छा है। ओठ पर रखते ही ये इतनी मधुर है कि इतना माधुर्य, न दधि मे, न मधु मे न माधवी मे।

पर हाँ इनमे एक आदत है। जब अपनी आदत से लाचार, ये जल पडती है, तब लोगो पर जरूरत के या बिना जरूरत के कालिमा पोतने, ये तुम्हारी ही तरह उठ खडी होती है।

पर इससे क्या ये अपनी कहानी कहे जायँगी और मै इन्हे ओठ से चिपकाये जाऊँगा। इनकी जलन मे शान्ति देना, मुझे मेरा कर्तव्य मालूम होता है।

हाँ मै मानता हूँ कि ये बहुत सुन्दर नही है। सदा ही बाग मे, गरीबी से दिन काटे है, अत ठण्डक, गरमी और बरसात तीनो ने अपने जौहर इन पर आजमाये है। किन्तु जिस तरह तुम अपनी कविताओ मे करती हो कि प्रेम के गाहक को रूप का गुलाम नही होना चाहिये। सच पूछो तो तुम्हारी गैरहाजिरी मे, इन्हे पाकर तुम्हारी उस परम सूझ का अर्थ आज समझा।

तुम यहाँ रहती हो, तब तो तुम्हारी हर पक्ति पर, मुझे लाचार सिर डुलाना, और हाँ, हाँ कहना पडता है। किन्तु तुम्हारा 'प्रेम के गाहक को रूप का गुलाम' न बनने देने वाला तो परम-तत्व है। और उसके आधार पर मेरे ओठो तक बात आगई है, कि मै इनसे कह दूँ कि तुम मेरे पास ही रहो।

और क्या मुजायका है, यदि ये जली-कटी रहे। जली-कटी कह-कर, तुमने मुझे इतना अभ्यस्त बना दिया है, कि स्वय जली-कटी रहकर ये मेरा कुछ न बिगाड सकेगी।

एक दोष इनका मुझे और दीखता है, जिसे तुम्हारे सामने साफ-साफ कह देना चाहिये। ये बडी निराशावादी है, इनकी हर साँस से मानो अन्धकार बिखरता है।

क्या दुनियाँ मे मुँह के सोधे और मन के मैले ऐसे लोगो की कमी है, जो प्यारे लगते है, किन्तु बडी कडवी बाते करते है, फिर इनकी—जलन मे इनके मुँह से जो निकल जाय, उसे कभी निगलने के लिये, हमे उदार होना चाहिये। क्यो कि जब अपने घर के चूल्हे का धूँआ तुम मेरी बेठक तक छोडती हो, तब मै घर छोड कर भाग तो नही जाता।

और जब, चौक मे, अगारे बिखरे रह जाते है तब भी मै उन्हे हटाकर, भोजन करने के लिये अपनी जगह तो बना ही लेता हूँ।

मेरा तो सिद्धान्त है कि

फिर चाहे कोई इजिन धुँवा छोडे या आग। वह हमे बचाता जाय।

सो इन नवेली श्रीमतीजी के आने से तुम्हारी गैरहाजिरी मे मेरा जी खूब विलम जाता है।

तुम्हारे आने पर भी बिलमा रहेगा। क्योकि तुम जब 'प्रसाद' और 'पो', 'सूर' और 'गोविन्दाग्रज' की रचनाओ से अपना जी बिलमाते समय, मेरी भरपूर उपेक्षा करके भी, कभी उस पर दुखी नही होती, तो मै यदि इन देवीजी से अपना मन नहलाऊँ तो तुम्हे कष्ट नही होना चाहिये। सच मानो दुनियाँ के कवियो की रचनाओ मे वह सुरुचि, सुगधि और स्वाद न होगा, जो इन नवागन्तुका के दर्शन, स्पर्श और जीवन मे है।

फिर त्याग का भी तो उदाहरण देखना पडेगा। जो अपने पर मिटने को उद्यत हो, उसका निरादर कैसे किया जाय ? जो आत्म-समर्पण की ज्वाला जगाये रहे, उससे कैसा मुँह फेरा जाय ? जो मेरे लिये तिल-तिल मिटने को तैयार हो, उसका निरादर कैसा किया जाय ? जो जीते जी हृदय से चिपक कर रहने का छोटापन स्वीकार करने को प्रस्तुत हो, उस पर अपना बडप्पन जता कर, कैसे कहा जाय कि मेरे घर मत आओ।

ऐसे 'जन-सेवक' देशी हो कि विदेशी, गुणज्ञ होने चाहिये। सो ये तारीफ के लायक गुण-सम्पन्न है। भारतीयो मे तो, इस जाति के लोग अपने गुण को, अपने मुँह पर लटकाये घूमते है। किन्तु ये गुण का प्रदर्शन लेकर नही चलती। इनकी भलाई तो इनके रग-रग मे भरी हुई है।

अत मैने इन नवेली मेहमानिन को अपने घर मे जगह दे दी है। तुम नाराज मत होना।

तुम्हारा
बिनारस्सी परसाद

मुन्शी बनारसीप्रसादजी ने चिट्ठी को मोडा, एक चौकोन लिफाफे मे रखा, मोडते-मोड़ते, पत्र की पीठ पर, महरी के नियमित न आने और दूध देने वाली गाय के 'कूद जाने' यानी दूध-देना बन्द कर देने की रिपोर्ट और रम्मू को चुम्बन लिख दिया। साथ ही लिख दिया, मेरे ओठ तो आजकल 'नवेली' के लिये सुरक्षित है। और लिफाफे पर यह पता लिख कर—

श्रीमती हृदयनन्दिनी नायक
शैलनगर
पो० आ० वर्षाघाट
कैलाश प्रान्त

पत्र को डाकखाने मे डलवा दिया।

ठीक ६ दिन बाद उत्तर मिला—

श्रीमन्,

अच्छा हुआ। नये कवि यदि नये विपयो पर कविता लिखते है, तो आपके पुराने कट्टर दिमाग ने भी जो कविता लिखी, नये विपय पर लिखी। न वह भगवान पर है, न भक्तो पर, देश-भक्त पर ही है। धूम्रपान ही पर सही।

आखिर कविता और कवियो को कोसते-कोसते ही क्यो न हो, आप कवि बनने चले, यह अच्छा ही हुआ। विपय भी कैसा बढिया मिला आपको। सिगरेट पर, यह विवेचन अभी ताजा ही ठहरेगा।

दस-बीस नवेलियाँ रोज 'राख' करके आपकी 'सुरुचि' बढेगी। सारी शुक्ल-वर्णा बेचारियाँ, श्याम हो जायँगी। उनके जलने-भुनने मे आपने साम्य मेरे साथ ढूढा। पहेली की नवेली से मुझे डाह क्यो होने लगी, जब साक्षात् नवेली के आने तक मै धीरज धरने की बात सोचे हुये हूँ।

केवल एक ही डर है, धुएँ से निकोटिन जहर आपके कलेजे मे बढेगा, और वह आपके और रम्मू के दोनो के लिये हानिकारक होगा। इसके सिवा, मुँह से एक दुर्गन्ध भी आने लगेगी। सभ्यता में नवागता नवेलियो के सिवा, बाजार मे और भी चीजे मिलती है। किन्तु जो व्यक्ति 'प्रसाद' और 'पो' पर तानेकशी करे, उसमे कश खीचने का लालच कोई देखे तो आश्चर्य क्या?

अभी तक गृह जीवन का विनोद, हमारे विपय स्वभावो मे भी जीवित था। अब नवागत आदत से आपके स्वास्थ्य को हानि पहुँचते ही स्वभाव को भी हानि पहुचेगी। जिसका परिणाम यह होगा कि आपकी आज की कविता, कल की गालियो मे बदल जावेगी। यह मै डाह से नही, चाह से कह रही हूँ।

कितना अच्छा होता यदि ऐसा ही गद्य आपने बेचारी घर की महरी पर लिख दिया होता। वह स्वास्थ्य-नाशक तो नही है। बर्तन और मकान साफ रखती है। स्वास्थ्य-वर्धक है।

आपकी
नही, युग के महाभावो की
हृदयनन्दिनी

मुन्शीजी ने पत्र देखा। हँसे कि, मेरे दुश्चरित्र होने पर लताडे होगी। किन्तु खोलकर पत्र पढते ही नन्दिनी की प्रतिमा के सामने झुक गये। बोले—

'बाजी मै हार गया'

मुहब्बत का रंग

छरहरा जवान। गोरा बदन। चेचक के दाग। कानो मे सोने के दो वहुत पतले बाले पडे हुये। आँखो मे कल रात काजल लगाया था, जो अभी, दूसरे दिन के तीसरे पहर तक धुला नही था, मानो खाये हुये प्याज की बू हो, जो मिटने के लिये और वक्त माँगती हो। माँग-पट्टी के बाल। हाथ मे चादी की एक काँच का टुकडा लगी हुई, अँगूठी। बोलने मे उवासी आ रही थी, मानो कही से थककर आया हो, और सोने की तैयारियाँ कर रहा हो। कुछ गुस्सैल स्वभाव--मानो सारा ससार उसके रूप की हाट मे रहन रखा हुआ हो। गर्व से कुछ बनकर, कुछ मटककर चलने की आदत, बैलो जैसे काँधे हिले, और हाथी जैसे बेकाबू पाँव धूलवाली सडक पर पडे कि धुए जैसी कुछ धूल मुँह तक उडे, और अगारे जैसे पावो पर कुछ धूल राख जैसी चढ जाय। आदमी होकर, जरा मे चिढ पडने, और थोडे मे रो पडने की आदत। झट से चमक उठने का स्वभाव। अपनी औरो पर की हुई भलाइयो की लम्बी फेहरिस्त, अपनी स्मृति-जेब मे, किन्तु उससे दसगुनी वडी औरो द्वारा अपने पर किये गये अपकारो की फेहरिस्त। और इस बात का अल्हड अज्ञान कि अपकारो के औरो द्वारा होने पर भी, उपकारो की फेहरिस्त अपनी ही तबीयत मे छोटी होने के क्या

मानी होते हैं। बनकर, सजधजकर, बीच सडक से निकलने का स्वभाव। विदेशी व स्वदेशी और सर्वदेशी के भाव से परे, बिलकुल ठेठ देशी। पतली, लाल किनारेदार, पर दाहिने घुटने पर पैवन्दवाली धोती। कुरता जरा कुछ मैला-सा, पर सफेद मलमल का, जिसके नीचे लाल रेशम की जाकिट। सफेद कुरता मैले से और रेशम की झाँकी से सयुक्त झाँई खाकर, सफेद कम दीखे, बैंगनी ज्यादा। पान ठूँसकर खाने, उसकी लाली की अगुलियाँ दीवारो पर पोछने, और उससे बिगडे ओठ, कुरते से, सँभालकर पोछने की दक्षता! ओठो पर पानी। मूछो का कुछ-कुछ आरोप-सा हो ऐसी उम्र, शायद मर्दाने कपड़ बदन पर होने के कारण। भोपाली जुल्फ रखने की खबरदारी और मुडी जुल्फ के गालो पर जाने पर, उन्हे मुडा हुआ रखने के लिये, पीले चदन की दोनो गालो पर दो बूँदे। सिर पर पाग, जरा टेढी, बनक कुछ इन्दौरी। रियासत अनुराधापुर के निवासियो के सिर पर प्राय ऐसी ही पाग होती है। पाग का रग मोतिया, पीलेपन की झाँई मारता हुआ। किन्तु उसकी नोक पर, कपाल पर लटकनेवाली नई सभ्यता की 'द्वितीय चोटी' की कृपा से, तेल कालिमा। दाँतो मे सोने की कीले। हाथ मे, अँगुलियो की पोरो पर मेहदी लगी हुई। प्रश्न पूछने पर, गुर्राकर घूरने उपेक्षा से जवाब देने, और फिर शरमा जाने का लहजा। हाथ मे बुन्देलखडी लाठी, पूरबी नही जिसमे ऊँची गाँठे होती है, और नीचे लोहे की सिमियाँ लगी होती हैं। सीधी, सादी, पीली लाठी, जिसमे ऊपर सूत का, श्रावण की राखी फैशन का, रगीन बुन्दा लगा हुआ, और बीच-बीच मे चमडे के बन्द लग हुये। ठिगना कद, उम्र को छिपाने का सयुक्त हथियार-सा, आकर्षण का विक्रम अमर रखने का रामबाण नुसखा-सा। देखने मे गुस्सा, किन्तु बोलने मे मुस्कराहट, मानो सतपुडा की इन घाटियो के बीच, कोई समथर

जमीन ही न हो, जहाँ स्टेशन बन सके, और आदत की गाडी ठहर सके। पडोस मे रहनेवाले जासोन गाँव के मालगुजार के बिगडेल लडके द्वारा फेके हुये, कागज के चित्रोवाले सिगरेट केसो को जेब मे रखने की सावधानता। कपडे रँगने और उन्हे सवारने की अच्छी थियोरोटिकल जानकारी, और उस पर जहाँ-तहाँ मुँह मारना। गुलेल रखने, और उसे अपनी नजर ही की तरह, बेगुनाहो पर, छुपकर आजमाने की कुछ सफल, और अधिक असफल आदत।

और यह कहानी, मै उन लोगो के लिये तो लिख ही नही रहा, जिन्हे दुनिया मे फुरसत नही है, या फुरसत कम है। इसका चरित नायक कोई हो, पाठक किसी को भी माने, किन्तु इसका पाठक, और इसका आत्मा तो वही हो जिसे जल्दी नही पडी है।

हाँ, तो कपडे रँगने की जानकारी मगर जात तेली। नाम भोला, वल्द बच्चू। साकिन अनुराधापुर राज का अनुराधापुर शहर। किराये से गाडी चलाने का रोजगार। अनुराधापुर, गाँव होकर, 'राज' होने से शहर। महल मे शहर चमके, सडको पर गाँव। रेल से दूर—६७ मील। हीरापुर स्टेशन से बैलगाडी चौथे दिन पहुँचे।

(२)

"तो सुस्ती किस बात की आती है?" नसीबन ने कहा, जरा सँभल कर सोचते हुये मानो अपना हक आजमाती हो।

रमजान बोला—"तुम तो बस वैसी ही हो, बेल जैसी, बेर देखा न बबूल, सर चढने को दौड पडी।"

"जो लिपटता है, वह तो सर चढेगा ही। काँटे मे बदन कँटवाना क्या कोई यूँही अपना रोजगार बनायेगा। दस-बीस चुभनेवाली बात सुनते हो, और फिर सफेद लम्बी-दाढी हिलाकर मुसकरा देते हो—

यह सर चढाने का न्यौता जो देते हो—अरे हाँ। जानते हो, आखिर लडका है। उसमान फौत हुआ है, तब से उसे मुँह लगा रखा है। और आज जरासी बात पर उसे नाराज करते हो। खिलौना तुम न ले दोगे, तो कौन लेदेगा ?"

रमजान रँगरेज है। नसीबन उसकी स्त्री है—रँगरेजिन। उनके एक ही एकलौता लडका था उसमान। कोई ११ बरस हुये, वह आठ बरस की उमर म मर गया। करीमन उसमान की माँ, और रमजान की दूसरी औरत, सौर से बाहर होते ही मर चुकी थी। उसमान को, उसकी 'बडी माँ' नसीबन ने पाला था। उसमान के मरने के बाद, रमजान की तबीयत कही नही लगती थी। वह कपडे रगना तो, होजो के बने रग की तरफ ही देखता रहता, और तीसरे पहर से शाम हो जाती। रँगे कपडे सुखाते समय दरख्तो की तरफ देखता तो दरख्तो, उनकी डालियो, उनके पत्तो, और दरख्त पर बैठे पक्षियो के तरफ ही देखता रह जाता। नसीबन ने देखा, पुत्र-शोक एक ऐसा नाला है, जो उतरती उम्र के रमजान से लाँघा न जायगा। उसने रमजान की याद के पेर रखने, और सकट के आरपार आने-जाने के लिये, एक सजीव बुत ढूँढ दिया। यह था, बच्चू तेली का लडका भोला। बडी-बडी आँखे, गोरा बदन, कोई दस-ग्यारह बरस की उमर। रमजान से बाबा कहता। और मुहल्ले मे यदि कोई उसे डाँटता तो रमजान से आकर लिपट जाता। एक खूटे से बँधते-बँधते पशुओ को, घर और घरवालो से मुहब्बत हो आती है, भोला तो आदमी का बेटा था।

(३)

अब भोला बीस वर्ष का हो चला था। वह रमजान से जब

बोलता अविकार की भाषा मे । रमजान दिनभर उससे विनोद करता रहता । विनोद ने ऐसी तदबीर की, जिससे भोला की बेवकूफी की बाते टालने मे सहारा मिलता, देरी से की जा सकनेवाली बातो को जल्दी से करने की जिद करने पर देरी लगाने के लिये समय निकल आता, और किसी अटपटी और अनहोनी-सी बात की जिद यदि भोला करता, तो विनोद वह समय का वह खाली मैदान था, जो समस्याओ पर सोचने और उन्हे सुलझाने का समय देता। विनोद अकरणीय कार्यो पर, न करने की बात कहने पर, जी पर ठेस न लगाने देने, अधिकार का सिहासन डावाँडोल न होने देने और चेहरे पर गुस्से से शिकन न पडने देने का मुलायम मसाला था।

भोला को उसके एक दोस्त ने न्यौता दिया है कि, अनुराधापुर रियासत से लगी, विशाखापुर रियासत के एक गाँव, सोनामाटी को, वह अपने दोस्त की बारात मे जावे। तारुण्य, बारात मे जाना, मित्र का न्यौता, जाति में 'कुछ हूँ' दिखाने की साध, और खूबसूरती—इन सबके साथ अगर हो चरम-दारिद्र्य, तो वह गाँवो-खेडो की, खून मे खानी और बदन पर मास रखने वाली तरुणाई को, मौत के घाट ले जाने तक विद्रोहिनी बना डालता है। भोला, अपने चाचा के यहाँ रहता था, जो गरीब था, और चोरी के अपराध मे दो बार सजा पा चुका था। उसके न माँ थी, न उसका बाप था। नसीबन ही उसकी अम्मा थी, और रमजान उसका बाप। अधिकार की यह बुरी आदत है कि वह अपनी मर्यादा सदा ही लाँघता आया है।

आज, रमजान से भोला ने कहा—"बाबा, आज हमारी पगिया रँग दो।"

"वाह रे लाट साहब के बेटे, न ढग के कपडे, न पैरो मे जूतियाँ, और पगिया रँग दो।' जवाब पाया।

ना बाबा, जूतो मे तो तेल देकर रख दिया है । जूते तो खरीद लिये । कपडे को रेशम की 'जाकट' क्या बुरी है—हाँ मलमल का कुरता मैला है, उसे मै धो लूँगा । न हो, उसे भी रँग दो ।

रँग दो । अरे लाट साहब, शादी तेरी है या तेरे दोस्त की। ब्याह मे रँगा कुरता तो दूल्हा पहिना करता है । तेरा कुरता कैसे 'रँग दो' । बारात मे जाकर तो तू दुलहिन माँगने लगेगा ।

भोला या तो खुश होना जानता था, या गुस्सा होना । विवेक का कोई मध्य-विन्दु उसके स्वभाव मे ठहरने के लिये न था । उसने अपनी बाजी गिरती देख, नसीबन से कहा—"देखा न अम्मा तुमने । आज बाबा मेरी बात के पैर न जमने देगे ।"

रमजान ने कहकहा लगाया—"अरे तेरी बात के पैर न सिर, जमे तो कौन जमे, और कैसे जमे ।"

नसीबन ने कहा—"अच्छा कुरता न रँगो वह दूल्हा का ही रँगा रहने दो । पगिया तो उसकी रँग दो ।"

और भोला की ओर मुखातिव हो कर कहा—"बेटा, तेरी पाग ले आ ।"

पुरुप पर स्त्री के अधिकार की बात पर, मानव जन्म से ही विश्वास करता है । भोला तो बरसो की बीसवी-इक्कीसवी सीढी पर था ।

नसीबन उठी, उसने हुक्के मे तम्बाकू भरी । अगारे चढाके। हुक्के की नाल, अपनी ही फूँक से ठीक की । और रगीन घर की उस सम्राज्ञी ने, तम्बाकू की वह नियामत अपने बूढे सम्राट् के सामने पेश की ।

रमजान जरा खाँसा, फिर उसने अपना मुँह अपने गले पर पडे गमछे से पोछा और हुक्के की गुड़गुडी मुँह मे लेकर, धीरे-

धीरे इस तरह गुडगुडाने लगा, मानो जाडो के दिनो, देर से लौटकर आया हुआ कबूतर, अपने घोसले मे, अपने परिवार को पखो मे दबा, प्यार से गुर-गुरा रहा हो।

बचपन मे, एक स्वस्थ बच्चा, अनेक वडे आदमियो की दौड और फुर्ती अपने मे रखता है। हुक्के की तम्बाकू अभी सुलगी भी न थी, कि भोला अपनी पाग लेकर आ गया। और उसे रमजान के पैरो पर फेक दिया—मानो वह उसकी आत्म-मर्यादा हो, जो पगिया रगवा लेने के लिये रिश्वत की तरह, पैरो पर बिखेरा गया हो।

रमजान ने हुक्के की गुडगुडी मुँह से न हटाते हुये, पाग समेटी, और उपेक्षा से नसीबन की तरफ फेकी।

और कहा—"यही आठ-नौ जगह फटी पगिया है न, जिसे महज अच्छा रग देने से वह इस तेली के बेटे को, ब्याह मे रँगीला दीखने-वाला छैला बना देगी।"

"देखो अम्मा, बावा कैसी बाते करते हे।" भोला ने कुढकर कहा और आँसू बहाते हुये अपनी पाग खुद समेटने लगा।

नसीबन बोली—"ठहर, जरा ठहर तो। आँसुओ के रँगने से वह पाग, रगीन होने से रही। इसे तो रग से ही रँगना होगा। अच्छा कौन-सा रग है पाग का?

भोला बोला—"बनिया बैठने तो देता नही, और कहे झुकता-सा तौलना! बाबा कुछ बोले भी तो!"

"अरे तो बाबा के बेटे, आज तो रग तैयार नही है। रग को तैयार करने मे चौबीस घण्टे लगेगे। वक्त की घडियाँ भी क्या कोई बिस्तरा है, जिसे जब चाहा लपेट लिया, और जिसे जब चाहा फैला दिया। और तेरी अम्मा क्या होई—"

"मैने तो अभी कुछ नही कहा" नसीबन ने जरा तमक कर रहा। और कहा—"यह चीनी-मिट्टी की माट मे रग तैयार जो

रखा है?" रमजान, जरा खाँस कर बोला—"वह तो मोतिया रग है।"

भोला का मन, निराशा के बरसाती नाले मे डूबता, थाह पा गया। बोला—"मुझे भी तो मोतिया रग का ही पाग चाहिये।"

नसीनब बोली—"लो अब तो रँग दो।"

रमजान ने हुक्का हटा दिया। और अपनी मिरजई के बन्द खोलते हुये कहा—"भोला लडका है। मगर तुम तो नन्ही नही हो। जानती हो कि वह चीनी-मिट्टी की माट है। रियासत के फरमाँ खाँ की पागे रँगने के लिये वह रग तैयार किया गया है। घोडा बादशाह का हिनहिनाये और कल्लू मोदी अपनी खुजडी उस पर रखने दौडे—अजब मसल है। भोला को बारात मे क्या जाना है, तुम्हे उसे सिगारने के लिये चारो खूँट जागीर भी छोटी मालूम होती है।"

नसीबन ने पगिया उठाई और पानी मे भिगोने लगी। भोला बोला—"अम्मा, एक तो मै पगिया मोतिया रग मे रँगवाऊँगा, दूसरे बाबा जान, मुझे मेरी पाग वैसे ही बाँध कर देगे जैसी नायब साहब की पागे बाँधा करते है और तीसरे स्वय बाबा रँगेगे, तो पगिया रँगी जायगी—नही तो भोला बारात न जायगा।"

सन्धि की शर्तें रख दी गईं। बूढा रमजान, अपना निर्मल हास्य बखेर कर बोला—"बादशाह सलामत की पागे भिनसारी रात रँगी जायगी। और तेरी तो पहिले रँगी जानी चाहिये।"

फिर नसीबन से बूढा बोला—"यह क्या मजाक करती हो, यह पगिया कैसे रँगी जायगी।"

नसीबन बोली—"नवाब साहब की पगिया जिन्दगी भर रँगी है। और जिन्दगी भर रँगेगे। क्या उस रग मे एक डोब, किसी

गरीब की पगिया को नही मिल सकता ? और आखिर नवाब साहब की पागे भी तो तुम्ही बँधी-बँधाई, डब्बो मे बन्द करके दोगे ? तब क्यो न तुम एक पाग इस छोरे की, उसी ढब पर बाँध दो ।"

रमजान चिढा, बोला—"औरत की जात जो हो। क्या जानो नमक की कीमत, और रोटियो के हीले को। मै तो रईस की पाग क रग मे, भोला की पाग नही डुबाऊँगा ।"

नसीबन ऐसी चौकी, जैसी उसकी आँखे खुल गई बोली—"तुम मर्द हो" और भोला की पाग उठाकर, गीली ही भोला के पास फेक दी। और कहा—"जा रे बेटा बिना माँ-बाप के छोरो को, पाग रँगते वक्त रँगरेज भी यह मालूम कर देना चाहता है, कि वे बिना माँ--बाप के है, और गरीब है। गरीब-गरीब को धुत्कारे और अमीर-अमीर की-सी कहे, इसे दुनिया कहते है ।"

भोला के मुँह को लकवा मार गया। गीली पाग, नसीबन की देहली पर ही पडी छोडकर वह चुपचाप चला गया।

(४)

रमजान बोला—"लडके की आँखो पर गुस्सा भरा था ।"

नसीबन ने कहा—"गुस्सा किस पर करेगा अभागा ।"

रमजान—"क्यो ?"

नसीबन—"पूछते क्यो हो ? पगडी पीछे बारह आने ही तो मिलते है। इन पैसो भी क्या भोला महँगा है ?"

रमजान—"वह रईस है। उसके रग मे मै इसकी पाग कैसे डुबा दूँ।"

नसीबन—"कैसे ? वैसे ही, जैसे मैं जरूरत पडने पर अपने बेटे उसमान की पाग डुबा देती।"

"उसमान ! —"

बूढा हिल उठा—"उसमान !"

नसीबन ने कहा—"भोला ने तुमसे उसमान का दुलार पाया है। तब आज पाग रँगवाने और बँधवाने कहाँ जावे।"

(५)

दलील वजनदार थी। हाईकोर्ट का फैसला था। दावा मय खर्च के स्वीकृत हो गया।

× × × ×

अनुराधापुर के रईस, सोनामाटी के पास के अपने रियासत के गाँव, गोलन डोह से शिकार करके लौट रहे थे। नवाब साहब के साथ, धारनीगढ के राजा शार्दूलसिंह, दो शिकारी, दो सरदार और एक घुडसवारो की टुकडी थी। जब मोहनपुर के नाले से सरकारी सवारी गुजर रही थी, तब बैलगाडियो के पास खडे लोगो के झुण्ड के बीच, एक गोरे से छोकडे को उन्होने अपनी-सी, ठीक अपनी-सी पाग बाँधे देखा। पाग का बाँध वही था, बनक वही थी, पेच वैसे ही कसे थे, रग भी वही था। रईस ने अपने सिर से पाग उतारी और देखा। यह रईस की पाग थी, जो सर से उतर रही थी। दोनो मिलाया ! दो पागे, एक भीड मे खडे किसी खूबसूरत उठाईगिरे की और दूसरी अपनी, दोनो, आपस मे, अगर राई बढती न थी, तो तिल घटने के लिये भी तैयार न थी। दुखती चोट, और अनहोना दुर्भाग्य मानो ऐसी चीजे है जो होकर रहे। जब रईस ने अपनी पाग उतारी तब भोला मुस्करा

दिया । दो घण्ट के बाद जिबह् करनेवाले जानवर भी हरी घास का, बडे चाव से खाते है।

एक सिपाही घोडे से उतरा। उसने नाले की घाटी पर चढती हुई बैलगाडियो को रास्त मे ठहराया। उन सब गाडियो मे तीन ऊपर चढ चुकी थी। दो घाटी से फिसलकर नाले मे वापस नीचे आ गिरी थी। और दो अभी चढी ही न थी। अब इसके बाद से पूछ-ताछ शुरू हुई।

"किस गॉव की बारात है?"

"अनुराधापुर की गरीबपरवर।"

"कौन जात हो?"

"तेली सरकार!"

"क्या पेशा करते हो?"

"अपना ही पेशा—तेल बेचते है!"

"कहाँ जा रहे हो?"

"घर, अनुराधापुर ही तो चल रहे है।

फिर, मोतिया पाग के छैल-छबीले की तरफ घूमकर, सिपाही पूछने लगा—

"तू कहॉ रहता है बे लौडे?"

"वही अनुराधापुर!"

"किसका लौडा है?"

"तेली का लडका हूँ।"

"क्या नाम है तेरा?"

"भोला।"

"बाप का नाम?"

"बच्चू ।"

"तेरा बाप क्या करता है ?"

दूल्हे के बाप ने, बीच ही मे कहा, "इसके माँ–बाप कोई नही है सरकार। गरीब है बेचारा।"

सिपाही ने फिर पूछा—"तेरी पाग किस रँगरेज ने रगी है बे ?"

"रमजान बब्बा ने।"

सिपाही ने चट से पाग उतारी और एक-सा रग, एक-सी-बनक, एक-सी सुन्दरता देखकर भी यह गरीब की पाग थी, जिसे सिर से सदा के लिये उतारते हुये भी, सिपाही के हाथ में, झिझक की जगह न थी। सिपाही ने घूरकर लडके को इस तरह देखा, मानो खा जायगा । भोला सहम गया ।

दोपहर होता आ रहा था । मजदूर, खेतो मे गेहूँ काटने मे जुटे हुये थे । छोटे बच्चे, पशुधन को पानी पिलाने नाले पर ले जा रहे थे । आमो के बौर महँक रहे थे, और झर भी रहे थे । सडक की धूल उडकर, राहगीरो के मुँह, उनकी आँखो और आँखो की पलको के बालो तक को मटमैला किये हुये थी। गाँव की मजदूरिने, गेहूँ की पूलें बाँधती हुई गा रही थी—

"जी मे एक पहेली दूखी
दुनिया आज हरी, कल सूखी"

और शास्त्रो को रटे हुये पडित जी गेहूँ के पूलो की भीख माँगते हुये, एक हाथ मे सुलगी हुई चिलम और बगल मे डडा दबाये अपने ज्ञान को तुलसी की इस वाणी के द्वारा औधाये चले जा रहे थे।

"धरा को सुभान इहै तुलसी
जो फरा सो झरा, जो वरा सो बुताना।"

और खेतो मे छोटे-छोटे बच्चे, वृक्षो पर चहकते, पक्षियो को ढेले मार-मारकर उडा रहे थे। हर इच, हर मजिल, दर पर दर, और पग पर पग, मौसम की तरह बैलगाडियाँ धीरे-धीरे चली जा रही थी।

(७)

सीतलसहाय कान्स्टेबल रमजान को खोजता हुआ बोला—"चलो बब्बा तुम्हे दरबार ने बुलाया है।"

नसीबन ने पूछा—"क्या नवाब साहब बहादुर आ गये।"
सिपाही—"हा, अभी लौटे है।"

रमजान—"हमारा रईस बडा नामी है। परसूँ कही पाग देखी, तबीयत बहाल हो गई। फरमाया—इस बार पागो की रँगाई नही मिलेगी, इनाम मिलेगा। रमजान बब्बा धारनीगढ क राजा साहब, इन पागो की रँगाई-रँगवाई देखकर बाग-बाग हो गये है। कल आकर इनाम ले जाना। सो उसीका बुलावा आया दीखे है।" यह कहकर, कान्स्टेबल से कहा—"हवलदार साहब, बैठो, चलता हूँ।"

हवलदार बोला—"सरकार ने जल्दी ही याद किया है। चलो। वे इस वक्त दफ्तर मे है।"

रमजान ने मिरजई पहनी। वह उसके पास उसके ईमान की तरह एक थी। और डाढी पर हाथ फेरकर, वह अपने पेट की लाचारी से रँगे हाथो, चल पडा महल की तरफ।

× × × ×

फरमाँ खाँ कुर्सी पर बैठे थे। और एक टेबल पर सजाकर छ पागे रखी थी। कहना न होगा, कि इन छै पागो मे से रईस की एक पाग, हटा दी गई थी, और भोला के सिर से उतारी हुई पाग, इनमे मिलाकर रख दी गई थी। नवाब ने पूछा--

"ये सब पागे हमारी ही है न रमजान।"

रमजान--"आप ही की तो दीखती है हुजूर छै पागे ही तो परसूँ रँगकर, खादिम दे गया था।"

नवाब--"तब तुम चोर हो, बदमाश हो।'

रमजान का स्वभाव, इस वक्त आँवलो की मोट था, जो फैल गया था, और समेटे न सिमट रहा था। उसने धीरज सँभाला और कहा---

"रमजान ने हुजूर का नमक खाया है। उसकी पीडियो मे बेईमानी नही है।"

नवाब--"और उस तेली के लौडे ने क्या घुलाई दी थी।"

रमजान की गाँठ अब सुलझ गई। वह धीरज से बोला---

"हुजूर वह छोटा-सा बच्चा है।" वारनीगढ के राजा ने इसी वक्त कहा--"आपका रँगरेज आपको भी छोटा बच्चा समझता है, और बहलाने की कोशिश कर रहा है।"

नवाब---"बेईमान, साफ-साफ बता। तेली के लौडे की पाग का रग, और बनक, दरबार की पाग के रग की क्यो है?"

रमजान--"खता माफ हो सरकार, यह नमक का, रोटियो का, रग है, और वह मुहब्बत का रग है। वह मेरे बेटे की तरह है।"

इरादो के काले, जबाब के खूँखार, कलम के शाहसा, पैसो के भरपूर, रहम के खाली, और टूट पडने मे जगली जानवर को अधिकारी कहते है।

घोडे का हटर उठा नवाब ने कहा—"मुहब्बत का रग हराम-जादे। ले तुझे इस शायरी का मजा चखाऊँ।"

रमजान ने छत की तरफ देखा—मानो शैतान के घर मे खुदा को ढूढ रहा हो। सिर ऊँचा किया—मानो प्रेम सर्वनाश के समय भी, दामो से ऊपर उठकर खडा रहना चाहता हो।

रमजान ने कहा—"माफ करो गरीब-परवर, गरीबो को बेटे-बेटी समझे अन्नदाता।" रईस, समुद्र की तरह इस समय, अपने आवेश मे खुद डूब चुका था।

रमजान पर—

हटर, फिर हटर, फिर हटर! रमजान खडा रहा। महल के पत्थर पिघल उठना चाहते थे। सारे अधिकारी मानो सोचते थ कि आज राजधानी के सुहाग इन्साफ पर हटर पड रहे है। पर बिकी जीभ, और कायर कलेजे से टुकुर-टुकुर देख रहे थे।

"चोर हमारी पाग चुराकर उस तेली के लौडे को दे दी।"

रमजान धक्के मारकर निकाल दिया गया। उसकी मिरजई खून से लथपथ थी।

मसजिद मे नमाज पढी जा रही थी। मदिर मे पूजन हो रहा था। गिरजाघर का घण्टा बज रहा था। और रमजान अनुराधापुर की सडक पर इस तरह जा रहा था, मानो हिमालय शिखर से ठुकराया हुआ हिम-खण्ड है, जो गगा बनाता चला जा रहा हो!

गाडियाँ लौटी कि, खबर देने भोला, रमजान बब्बाके घर गया। कान्स्टेबल द्वारा बुलावा सुनते ही वह राजमहलो की ओर दौडा।

रास्ते मे लडखडाता, कराहता, और आँसू और खून साथ-साथ टपकाता रमजान मिल गया। उसे खून से लथपथ देखकर भोला उसके पैरो में लिपटकर बोला—"यह क्या है बाबा"—

रमजान बोला—"मुहब्बत का रग ऐसा ही हुआ करे है बेटा।"

नीलाम की चीज़

पण्डित गंगाधर शास्त्री थे तो कम पढ़े-लिखे, परन्तु शास्त्री इस-लिये कहलाते थे, चूँकि उनके दादा के दादा, संस्कृत के विद्वान् थे। गंगाधरजी तो कोई ३५, ३६ रेल्वे स्टेशनों के खोनचों के ठेके लिये हुये थे।

पण्डितजी के एक ही पुत्र था, उसका नाम था—वैतरणीधर। पण्डितजी ने शुभ मुहूर्त देखकर, अपने सुपुत्र की शादी की, समधी मिले, एक बहुत बड़े ताल्लुकेदार। दोनों समधियों को भगवान् ने अतिरेक दिया था। पण्डित गंगाधर की पत्नी केवल वैतरणीधर को जन्म दे सकी थीं, किन्तु ताल्लुकेदार साहब का घर 'डाटर मार्केट' था, कम-बढ़ कोई सात लड़कियाँ।

पण्डित गंगाधर, तिलक से सारे कपाल को पोत डालते, माला रुद्राक्ष की—इतनी लम्बी ऐसी पहिनते कि उसके कटीले पन से गाय का बछड़ा भी, गला छिल जाने के डर से, अपने गले में उस माला के पड़ने पर घबड़ाकर भागने लगता। जब वैतरणीधर अपने बाप की माला को, या तो विनोदवश या उस माला का उचित स्थान जानकर किसी

पडोसी की गाय के बछडे के गले में वह माला डालने लगता तो बछडा रस्सा समझ कर भागता। पडित गगाधर जब शाम के वक्त हरिपूजा करने बैठते—तब षोडषोपचार पूजन मे, नीम की लकडी घिसकर शालिग्राम-शिला पर चन्दन चढाते, अक्षत मे चावल का एक कण चढा देते, पुष्प और धूप का काम वे एक नीबू के झाड की टहनी से लेते, वे डाली को भगवान् पर झुकाकर, उसके पुष्प को नित्य चढा दिया करते और "पुष्प धूप समर्पयामी" कह देते। जब 'दीप' की बारी आती, तो पडितजी शुद्ध घासलेट के तेल की दूर जलती हुई 'टिमटिमदानी' की तरफ अँगुली दिखाकर, "दीप समर्पयामी" कह देते। भगवान् के नैवेद्य की तो उनके घर स्थायी व्यवस्था थी। दो सूखे हुए छुहारो को यह दलेल बोलदीजाती थी कि, जब तक वैतरणीधर उन्हे चुराकर न खा जाय, तब तक वे नित्य भगवान् के भोज के लिये रख दिये जाया करें। गरज यह कि पडितजी जरा खर्च कम ही किया करते थे। इतने मे आगई शादी, वह किस धूम-धाम से हुई यह कहना व्यर्थ है। ताल्लुकेदार साहब ने अधिक लडकियाँ होने से यदि कार्य को सूत्र रूप में निबटाया, तो पडित गगाधरजी ने एकाक्षर ब्रह्म ॐ की तरह अपना अगूँठा टेढा कर भरी सभा में दिखाते हुये, ताल्लुकेदार साहब के सूत्र को मत्र का रूप दे दिया!

(२)

विवाह मे एक घटना विचित्र होगई। जिस समय, सारा ब्रह्म-वृन्द ताल्लुकेदार साहब की चौपाल में भोजन करने के लिये बैठा, उस समय पहिले तो "कच्ची यहाँ नही, पक्की वहाँ नही" पर, इस सग्राम से निबट कर, किसी प्रकार लोगो ने खाना शुरू किया। ताल्लु-

केदार साहब का नाम अब अधिक समय के लिये छुपाकर, उनके साथ अन्याय करना उचित नही जान पडता। उनका नाम था हलधरप्रसाद वे बहराइच तहसील-बोर्ड के सभापति और अपने इलाके के पहिले दर्जे के आनरेरी मैजिस्ट्रेट भी थे। खैर, तो उनके पास एक नीलम जडी हुई सोने की अँगूठी थी। उसे पहिनती तो थी अक्सर ताल्लुकेदारिन साहिबा और वे जरा विशालकाय होने के कारण, उनकी छिगुनी म वह ठीक बैठती भी थी, परन्तु श्रीमान् शादी-विवाह आदि प्रसिद्धि के अवसरो पर उसे खुद पहिन लिया करते थे। खूबसूरत, मालगुजार पुत्र, और गाँव के निवासी होने से, उनकी जवानी मे वह अगूँठी उन्हे फब जाती थी। कम से कम देखनेवाले लोग उनका पहिनना सह जाते थे। परन्तु इस समय हलधर जी ५० की उम्र को पार कर चुके थे, अत नये लडके उनकी अँगूठी पर हँसा करते थे। खैर, तो ब्राह्मण लोग भूख नामक शत्रु का पता पाकर, और उसे पेट मे छुपा देखकर, तरह-तरह के प्रहार कर रहे थे, बूरे के बारूद, पूरियो के चक्र, लड्डुओ के बमगोले। जो कमजोर थे वे शाक-तरकारी का कीचड ही शत्रु पर अधिक फेकते थे। श्रीमान् हलधर प्रसाद मन-ही-मन इस बात का गर्व कर रहे थे—"वाहरे मै ! कितने ब्राह्मण मेरे यहाँ भोजन कर रहे है। है किसी में इतना दम ? अरे कोई है ? लाओ लड्डु श्याममुख शास्त्रीजी को परोसो !" श्याममुख शास्त्रीजी मानो कृष्णभक्ति के बहाने प्राप्त कृष्णत्व के साक्षात् स्वरूप थे। उनका चौकोन मुँह, चौडा चेहरा, इमली के बीजो की तरह मुँह पर नाक के आसपास चिपके हुये, छोटे-छोटे नेत्र, और श्यामवर्ण में उनके लाल-लाल ओठ, स्पष्ट प्रगट कर रहे थे कि शास्त्री श्याममुखजी, सचमुच ही 'अग्रजन्मा' है। विधाता ने उनके पूर्वजो को, प्रारम्भ में उस समय

बनाया था, जब उसका हाथ इस कला पर जमा न था। जब ताल्लुकेदार के आग्रह से लड्डू परोसना देखते तो, उनकी तबीयत बाग-बाग हो जाती। वे पुलकायमान होकर कह उठते—"कृपानाथ, अन्नदाता, वसुन्धराधिपति, धर्म आप ही जैसो के सहारे टिका है, नही तो वह कभी का रसातल को चला गया होता।" हलधर-प्रसाद बार-बार परोसनेवालो को पुकारते, और भिन्न-भिन्न सज्जनो की थाली मे, तरह-तरह के व्यञ्जन परोसने को कहते।

(३)

चूँकि वे नीलम की अँगूठी तर्जनी ही मे पहिने हुये थे, अत भोजनो का आग्रह और नीलम की अँगूठी का प्रदर्शन दोनो साथ ही साथ होते चलते। यह कहना तो बड़ा भारी गुनाह है कि आया हल-धर प्रसादजी, भोजन का आग्रह करने की सेवा-रूप मे नीलम की अँगूठीवाली तर्जनी को बार-बार आगे करते थे, या अँगूठी को बार-बार आगे करके दिखाने के लिये, भोजन की मनुहार की यह दौड-धूप थी। जो हो किन्तु ताल्लुकेदार साहब का यह कृत्य, उनके सम्बन्धी और दूल्हे के पिता पडित गगाधरजी को अच्छा न लगा। उन्हे यह अपमानजनक मालूम हुआ कि, लडके के पिता के सामने, नीलम की अँगूठी दिखाकर अपना बडप्पन जतावे, वे दूर एक चारपाई पर बैठे तम्बाखू खा रहे, और अपने आसपास की जमीन पर अपने और अपने साथियो के लिये थूक-थूक कर कुभीपाक नरक का निर्माण कर रहे थे। वे तुरन्त• उठे, और जेवनार के बीचो-बीच आकर अपनी गरमी के दिनो मे भी पहिनी हुई रुई की बारहवण्डी उतारकर खडे हो गये। उनके हाथ मे, कुहनी के ऊपर, और कधे के नीचे भुजा पर

एक सोने का ककण था। उन्होने, अपने मलाई की तरह गीले चमडे पर से किसी प्रकार ककण कुहनी पर सरकाया, और ताल्लुकेदार साहब ने ज्योही नीलम अँगूठीवाली तर्जनी को आगे बढाकर कहा—"यहाँ इमरती परोसो" पडित गगाधर ने चिल्लाकर, और अपना हाथ मोड कर, सोने के ककण को आगे करके, ककण-समेत कुहनी हिलाते हुये कहा—"और इधर देखो जी, यहाँ मालपूए परोसो, अरे हाँ, कब तक देखा जाय।" लोगो पर आफत टूट पडी, उन्हें खाना और हँसना दोनो एक साथ करना पडा ताल्लुकेदार साहब तो अँगूठे पर ककण की चढाई देख ऐसे गायब हुये कि फिर उन्होने मुँह नही दिखाया।

(४)

पडित गगाधर अपने घर लक्ष्मी सी बहू लेकर आ गये है, और दो-चार रोज में उनकी बहिने और बेटियाँ भी, अपने-अपने घर विदा होने को है। गगाधर शास्त्री की स्त्री पार्वतीबाई ने अपने पति से तकाजा किया कि लडकी को विदा मे एक गाय देनी चाहिये। शास्त्री जी के पास एक गाय थी जरूर, परन्तु वे उसे देना न चाहते थे। दूसरे दिन कारणवश, वे अपने गाँव की प्रायमरी पाठशाला के पास से निकले, जिसमे पोस्ट-आफिस, स्टाम्प बिक्री की दूकान और ऐक काइन-हाऊस भी था। उस समय स्कूल के दरवाजे पर कुछ मवेशी नीलाम के लिये खडे थे। एक चौपाया नीलाम पर चढा था और भूले-भटके कुछ लोग उस पर बोली भी लगा रहे थे। स्कूल ऊँचे टीलेपर था, और उसी के नजदीक टीले पर होकर सडक जा रही थी, जिससे गगाधर शास्त्री जा रहे थे। उन्होने देखा उस चौपाये के साढे-

तीन रुपये लगाये गये। गगाधर शास्त्री ने यह सोचकर कि बछडा चाहे बछिया चार रुपये का महँगा नही पडेगा, जोर से पुकारकर चार रुपये लगा दिये। शास्त्रीजी तो चार रुपये लगाकर निकल गये। सन्ध्या के समय काइन-हाऊस का चरवाहा, एक गधा हाँकते हुये शास्त्रीजी के दरवाजे आया और बोला—"लीजिये आप अपनी नीलाम की चीज, चार रुपये से ज्यादा किसी ने नही लगाये।"

(५)

इस समय लोगो की भीड का क्या कहना। इससे दसवी भीड भी नीलाम की जगह पर न थी। शास्त्रीजी झल्लाकर बोले—"क्या मैने गधा खरीदा है, क्या मै धोबी हूँ ?"

"यह मै क्या जानूँ, आपने चार रुपये इसके लगाये थे। नायब तहसीलदार साहब ने आपके नाम पर बोली खत्म कर दी। मुझे तो चार रुपये दीजिये। मै रसीद ला दूँगा, और यह गधा सँभालिये।"

"अरे तो मुझे बताना तो था कि मेरी गधे पर बोली लग रही है।"

"पर आप जब वहाँ ठहरे हो, बोली खतम करके नायब साहब आपको ढूँढते भी रहे—पर आपका कही पता न था।"

"भाई मै तो गधा नही लूँगा।"

"तो फिर नायब साहब के पास चलिये।"

"ना रे बाबा, रुपिया चाहे चार के आठ ले लो, पर एक तो मुझे गधा न दो, दूसरे मुझे अब नायब साहब के पास न ले चलो।"

वैतरणीधर के एक स्कूली मित्र नवयुवक ने कहा—"हलवाई

दादा, नायब साहब कोई जानवर थोडे ही है। आप खुद चले जाओ, और उनसे सब साफ-साफ कह दो !

किन्तु शास्त्रीजी इस समय भरे हुये थे, तपाक से बोले—"मैने तेरी अकल के पीछे सफेदी नही पाई है। अगर नायब साहब जानवर न होता तो मेरे गले मे यह जानवर क्यो बॉधता ?"

इतने ही में एक पादरी आगये, शास्त्रीजी को समझाने लगे—"हमारे ईसाई धरम मे तो गधा बुरा नही माना जाता।"

गगाधर शास्त्री यह सोचकर कि गधे का ग्राहक मिल गया, अपनी पगिया का पेच सॅभालकर बोले—"भला जी, तो आपके ईसाई धर्म मे गधा कैसा माना जाता है ?"

पादरी साहब ने इसे प्रचार का सुन्दर अवसर मान, अपना उपदेश इस प्रकार दिया—"हिन्दुस्तान क गवाँर और गुमराह लोग गधो के गुण नही जानते। ग्रीस देश की कुछ जातियॉ गधो को बहुत पवित्र प्राणी मानती है, और उसकी वहॉ पूजा की जाती है।"

शास्त्रीजी ने बीच ही मे कहा—"धन्य हो पादरी साहब, बडे वक्त पर आये।"

पादरी साहब कहते गये—"ग्रीस देश मे एक गधे ने, अपने युद्ध में गये हुये स्वामी के प्राणो की रक्षा की थी, अत वह गधा प्राण-रक्षक और भगवान् के अवतार की तरह माना गया।"

शास्त्रीजी ने कॉजी हाऊस के चरवाहे से कहा—"यहॉ एक तरफ बॉध रे भाई गधा, मुझे पादरी साहब का उपदेश सुनने दे।"

फिर वे, अपनी दूकान मे लगे हुये आईने मे अपनी सूरत, पगडी और चन्दन देखकर, कुछ खाँसे और फिर पादरी साहब का उपदेश सुनने लगे। पादरी साहब कह रहे थे—"परशिया क राजा ओजस

(Ozus) का एक गधा था, उसे उसने इतना पवित्र माना कि उसके लिये एक मन्दिर बनवा दिया, और फिर सारी जनता, उस खर-प्रतिमा की पूजा करने लगी।"

गगाधर शास्त्री मन्दिर के नाम से घबडाये, क्योकि उसके बाद ही शायद पादरी साहब मन्दिर के लिये चन्दा माँगने लगे, अत उन्होने कहा—"अजी मन्दिर-वन्दिर का क्या करना है, हम तो यही चाहते है कि आपके धर्म की अच्छी चीज मजे मे रहे।"

किन्तु पादरी साहब का भाषण बन्द न था। वे कह रहे थे—"ग्रीस देश मे ही निकन (Nicon) नामका एक गधा-सवार सेनानी, गधे पर चढे हुये ही एक युद्ध जीत गया था। वह व्यक्ति ग्रीस के धार्मिक इतिहास मे विजेता निकन के नाम से प्रसिद्ध है। जब उक्त युद्ध समाप्त हुआ, तब ग्रीस के सम्राट् ने उस गधे का पूरे कद का एक ताँबे का पुतला बनवा दिया जिसके रूप मे उस देश के लोग उस देश की विजय की पूजा किया करे।'

अब शास्त्रीजी अपना धीरज न रोक सके। वे बोले—"पादरी साहब, ले जाओ यह गधा मै आपको दान करता हूँ।"

पादरी साहब ने कहा—"ना मैने तो इतनी बाते इसलिये कही कि जिससे इस पवित्र प्राणी को तुम घर से बाहर न निकालो, और रुपये चुकाकर रख लो।"

इतने ही मे नायब तहसीलदार साहब का चपरासी रुपयो का तकाजा लेकर आगया। गगाधर हाथ जोडकर बोले—"मै चार के आठ रुपये देता हूँ और इस गधे के और तुम्हारे सबके पेरो पडता हूँ, इस गधे को मेरे यहाँ से ले जाओ।"

पर वे किस की सुनते। शास्त्रीजी से रुपये लिये और वे चलते बने।

(६)

लोगो की शरारत। न तो किसी गाँव का कोई कुम्हार, न कोई धोबी ही वह गधा खरीदे। शास्त्रीजी गधे को दस-पाँच मील दूर छुडवादे, पर वह ईमान का सच्चा प्राणी फिर सन्ध्या को शास्त्रीजी के खूँटे पर हाजिर। शास्त्रीजी ने देखा, लोगो ने मानो उस गधे को पुन काँजी-हौस न भेजने की या आसपास के काँजी-हौसवालो ने उस गधे को अपने यहाँ न लेने की कसम खा ली है। दुर्भाग्य, शास्त्रीजी जाति से बन्द कर दिये गये?

— ० —

बेगार का दण्ड

मेरी उम्र उस समय ११ वर्ष की थी। माँ विधवा थी, मैं यह बरसो न जान सका कि किसी बालक का पिता होना भी आवश्यक है। किन्तु हर घर मे मै देखता, एक बाप। तब मैं अपनी माँ से पूछता, और वह जवाब देती कि मेरा जन्म ऐसी घडी मे हुआ कि मै अपने पिता को खा गया। मेरी मा के पास दो एकड जमीन थी। वह उसे, हरसाल किसी किसान को दे देती और मिले हुये ८-६ मन अनाज मे हमारा साम्राज्य चलता रहता।

हम दो भाई-बहिन थे। मै कहता, 'मै अपनी मा का एकलौता बेटा हूँ।' कुन्दन कहती, 'मै अपनी मा की एकलौती लडकी हूँ।' अर्थमन्त्री बनकर मा, शनिवार को बाजार के दिन, जब मुझे दो पैसे देती, और कुन्दन को एक, तो काफी सग्राम मचता। मा की दलील यह थी कि मैं लडका हूँ, और मुझे दो पैसे पाने का हक है, कुन्दन तो लडकी है, उसे एक पैसे मे ही सतुष्ट रहना चाहिये। मै पूछता—क्यो मा कुन्दन को एक ही पैसे में सतुष्ट क्यों रहना चाहिये, तो मा कहती—बेटा वह लडकी है। और मैं न जाने किस झगडे मे पड जाता, यानी न जाने किस विचार मे डूब जाता।

मामा, मेरी मा को लड़ाक होने के कारण दुष्टा, मामी के कथनानुसार काम न करने के कारण मूर्ख, और मेरे लिये तथा कुन्दन के लिये मकई के भुने हुये भुट्टो के दाने और ककडी के टुकडे तथा ऐसी चीजे बचाकर रखने के कारण स्वार्थी कहते थे। तब मेरे मन मे यह परिभाषा बनती कि

अपने को गालियाँ पडने पर, दुख से बोलनेवाला दुष्ट, दिन भर काम करने के बाद, आधी रात के पश्चात् भी आराम की इच्छा और अपने बाल-बच्चो को देखने के लिये तरसनेवाला मूर्ख और अपने बाल-बच्चो को, अपनी ही खाने की चीजो मे से बचा रखनेवाली स्वार्थी।

मा हम दोनो भाई-बहनो पर मरती परन्तु मरना ही तो सब कुछ न था। पडौस के गोकुलप्रसाद भाई देश-भक्त थे, अपने हाथ से सूत कातते थे, अपने ही हाथ से खादी बनाते थे। जब कोई सफेद टोपीवाला हमारे गाँव सिंहपुर मे आता था, तब वह उन्ही के यहाँ ठहरता था। मालगुजार रनविजयसिह गोकुल साहू को, जमीन पर अपनी कुर्सी के बिलकुल पास बैठाते थे। पुलिस थाने के सिपाही गाँव मे किसी पर चोरी या मारपीट का मुकद्दमा बनाने के लिये, गवाह तैयार कर लेने का काम गोकुल साहू को ही सौंपते। मालगुजार जादव जाति के सरपच थे। इस जाति मे, विधवा विवाह होता है। सो, मालगुजार जब किसी की स्त्री को, उडवाकर, नजराना लेकर किसी दूसरे आदमी को दिलवा देते, तो गोकुल साहू यह कहने के लिये कि, औरत वादी की नही प्रतिवादी की है, पटेल साहब की आज्ञा पर हाजिर रहते। गाँव मे अगर किसी का 'इस्टाम्प' लिखना पडता, यानी कोई किसी से कर्ज लेता, तो लिखा-पढ़ी का काम गोकुल साहू को ही करना पडता। यदि कोई गाँव मे बीमार

होता तो दवा गोकुल साहू से पूछी जाती। किसी पर अदालत मे मुकद्दमा चलता, तो कठिनाई मे से निकलने का उपाय गोकुल साहू से पूछा जाता, यदि किसी बैल को पेखुरी की बिमारी हो जाती, यदि किसी गाय का दूध कम हो जाता, यदि किसी आम के झाड मे कुछ बरसो से फल आना बन्द हो जाता, या किसी के यहाँ कुम्हडे (काशी-फल) की बेल मे फूल तो आते, किन्तु फल न आते, यदि किसी की चीज गुम गई होती, और शकुन पूछना होता, तो लोगो के अवलम्ब थे गोकुल साहू। इसीलिये जब हमारी मा, हमारे मामा के यहाँ मजदूरी करती, तब मुझे और कुन्दन को यह हुक्म था कि हम दोनो गोकुल साहू के घर ही रहा करे।

वहाँ हम, गँजिया मे से घास लाकर बछडा-बछडी और पडा-पडी को डालते, घोडी की लीद उठा देते, दिन मे ५-६ बार झाडू से चौपाल झाड देते। 'साहू-बऊ'—साहूजी की स्त्री, का टूटे तल्ले का बाहना चमार के यहाँ जुडवाने ले जाते, साहूजी दिशा-मैदान जाते तो उनका लोटा उठाकर साथ ले जाते, गाँव भर मे साहूजी के हुक्म पर बुला-बुलाकर लाते, साहूजी के बच्चो, और उनके यहाँ आनेवाले मेहमानो के बच्चो के पाखाना होकर आने पर उनके बदन धुलवाते, आदि सेवाये हम दोनो भाई-बहन करते रहते, यह हमारा 'सनातन-धरम' था। इसके बदले मे हमे कुछ न कुछ मिलता। केवल माँ को एक ही बात की निश्चिन्तता रहती, साहूजी, मेरी माँ पर कभी कोई मुकद्दमा न चलवायेगे।

गाँव मे साहूजी का बडा वजन था। कोई चमार घोडा-घोडी पर बैठा जाता होता और वे रास्ते मे मिल जाते तो वह तुरन्त वाहन से उतर, उवाहन होकर, उन्हें झुककर सलाम करता, कोई चिलम पीता होता तो उनके दीखते ही वह छुपा लेता, गाँव की औरते यदि

पानी के घडे लिये, कुछ सामान लिये, या खाली हाथ भी लौटती, तो साहूजी के मार्ग मे मिलने पर वे सडक के किनारे लगी, गाँव की काँटो की बाडियो की तरफ मुँह करके खडे हो जाते, जब तक की साहूजी निकल न जाते ।

हमारे काम से अलग, हमारी मा साहू-बऊ के पैर दाबने जाती थी। तिस पर भी यदि सुबह मेरी माँ जाती हुई गाडी या घोडा-घोडी की सवारी के समय साहूजी को मिल जाती तो दस-पाँच गालियाँ अपशकुन करने के लिये जरूरी पाती ! क्योकि मेरी माँ काली थी ! दुनियाँ मे गोरी शकल का आदमी मिलने से शकुन होते है, काली शकल का आदमी मिलने से शकुन बिगड जाता है, यह मैने और कुन्दन ने बचपन ही में, अंग्रेजो द्वारा भारतीयो के प्रति घृणा की कहानियाँ सुनने के पहले ही जान लिया था ।

एक दिन गाँव का कोटवार आया, और मेरी माँ से बोला-नायब साहब ने तुझे बुलाया है। नायब तहसीलदार का बुलावा कोई इन्कार कर सके ? उस दिन घर मे खाने को कुछ न था, मामी रूठ गई थी अत माँ को ३-४ दिन से मजदूरी से अलग कर दिया था। माँ ने बचना चाहा, परन्तु कोटवार को रिश्वत मे देने के लिये न तो घर मे आनाज था, न पैसे । चूँकि मेरे मामा इसी गाँव मे रहते थे, अत माँ हर एक मर्द से बेटा, भैया, दादा या काका, और हर स्त्री से बेटी, बाई, मामी या नानी कहने के लिये बाध्य थी। माँ ने कोटवार को हाथ जोडकर कहा 'मल्लू भैया, तेरे पाँव पडूँ, मेरे घर मे अनाज का दाना भी नही है, न सौगन्ध खाने को एक पैसा, घन भैया की स्त्री (यानी मेरी मामी) ने मेरी मजदूरी के न पैसे दिये, न मेरे अनाज का मिट्टी का मटका ही वहाँ से उठाने दिया। आज मेरे बच्चे भूखे रहेंगे । मुझे छोडकर किसी और को बेगार मे ले जाओ ।'

कोटवार ने डाँटकर कहा—"अरी रमिया जरा ज़बान सँभाल कर बोल। क्या तू इतनी बडी आदमिन होगई, जो नायब साहब के बुलाने पर न जायगी ?" "मै तो आजतक कभी बेगार मे नही गयी भैया।" रमियाँ ने अपनी सचित करुणा आँखो मे लाकर कहा।

"तो अब चल। गाँव मे तू कौन बडी पटवारिन है, जो तुझ बेगार मे चलते शरम लगती है।"

"भैया, पटेल दद्दा के मै पैर पड लूंगी, मै हाथ जोड लूँगी। आज बेगार मेरी हटादो।"

"तेरा बेगार छुडवा के कौन जूते खायगा। पटेल दद्दा ने तो कही थी, रमिया कभी बेगार मे जाती नही। पर गोकुल साहू जी ने चार बेगारियो के नाम दिये थे, उसमे तेरा नाम तो पहला दिया है। चल चल देरी मत कर।" मल्लू कोटवार ने अपना स्वर जरा धीमा करके कहा।

अब मेरी माँ सब समझ गई। मेरी मामी और गोकुल साहू की पहचान बहुत पुरानी है। कहने को तो मामा-मामी एक दूसरे के सब कुछ होते है, किन्तु सारा गाँव जानता है कि गोकुल साहू भी मामी के कुछ होते है। और आज तो माँ से मामी नाराज होगई है। इस-लिये गोकुल साहू की अदालत से माँ को यह दण्ड दिया गया है।

आखिर माँ उठी। वह गोकुल साहू के यहाँ गई। उनके पैर पडे। साहू-बऊ के पैर पडकर कहा—"मै आज बेगार मे जाती हूँ, बऊ-माँ। नायब साहब ने मुझे भी बुलवा भेजा है। मल्लू कोटवार यह क्या बुलाने खडा है।" साहू-बऊ को अचभा मालूम हुआ।

वे बोली—"दुर पगली, तुझे कौन बेगार मे भेजेगा। बडे आदमी के तो कुत्ते को भी कोई रोके और मारे तो मुकदमा चल जाय।"

"पर मै कल से बडे आदमी की कुतिया भी नही रही बऊ-माँ ! भाई के यहाँ पेट भरने पर नौकर थी। भौजाई गगा को तो तुम जानती हो। वे रूठ गई है। बस जिस तरह पेट मे अजीरन होने पर सिर दूखने लगता है, उसी तरह गगा-रानी के रूठ जाने पर साहू दादा क्यो न रूठते। नायब साहब से उन्होने कह दिया कि रमियाँ राँड को बेगार मे बुलवा लो। सो अब जाती हूँ, बऊ-माँ।"

साहू बहू सब रहस्य समझ गई—"तुझसे गलती क्या हो गई री !" उन्होने पूछा !

मेरी अम्मा ने कहा—"परसो साँझ, मेरे भैया गये है सुलतानपुर कल उनकी तहसीली मे, बिना गिने कुम्हार के खपरे उठवा लेने के मामले की पेसी थी। इसीलिये खाना बनाकर उन्हे खिलाया। वे गाडी-बैल लेकर रवाना हुये। मै भी घर आई। आते वक्त भौजी ने कह दिया था, मेरा पेट दुखता है, गोकुल साहू से कह देना कोई दवा भिजवा दे। मै क्या जानूँ माँ कि मेरे भैया की गैरहाजरी मे अगर भौजी के पेट को गोकुल साहू की दवा नही मिलेगी तो, वे मेरी नौकरी खाकर पेट अच्छा करेगी, और यह भी मुझे नही मालूम था बऊ माँ कि साहू दादा भी मेरी उस दिन की भूल से मुझे बेगार म भिजवा देगे। मै घर आई तो, किसन बोला, रामलीलावाले है, देखने जाऊँगा। मेरी अक्कल पै पत्थर पडे, मै किसन और कुन्दन को लेकर, करिन्दा कक्का के चौपाल पर रासलीला दिखाने चली गई। और भौजी के पेट दूखने की बात बिलकुल भूल गई।"

साहू-बऊ इस रहस्य को जानती थी। वे इस घटना पर नाराज भी खूब थी। उनकी आँखे और पिसते हुए दाँत साफ कह रहे थे। किन्तु वे माँ के मुँह से सुनकर, अपने मर्द की बदनामी सहन नही कर सकती थी।

बोली—"तो जिसका पेट दूखेगा वो तो नाराज़ होवेगा ही। और साहू जी अगर अपने गिरह की दवा खिलाकर लोगो को चगा करते है तो कौन-सा अपराध करते है।"

इतने मे लल्लू कोटवार पुकार उठा—"चल रमियाँ, अब बहस बन्द कर। दिन चढ रहा है। तू भी गाली खायगी, मुझे भी जूते खिलायगी। नायब साहब बडा टेढा आदमी है।" मेरी माँ ने मुझे चूमा। कुन्दन की पीठ पर हाथ फेरा, फिर साऊ-बऊ के पाँव छुए, और आँखो मे आँसू भरकर मल्लू कोटवार के पीछे चल दी। जैसे कोई जानवर हो, जो खूँटे से छोडे जाने पर अपने मालिक के पीछे-पीछे जा रहा हो।

हम दोनो भाई-बहन उठे, और साहू-दादा की चौपाल बदस्तूर होडा-होडी से झाडने लगे।

झाडते-झाडते कुन्दन ने कहा—"अम्मा तो गई किसन। अपने भी दद्दा होते तो अच्छा होता।"

—.○—

बिरन, मेरो सावन बीतो जाय !

सावन का महीना है। बच्चो को बरसती फुहारो मे घूमने का लालच होता है। अभी कपडे पहिनाये नही कि तुरन्त मैले, दिन भर कीच लपेटे, गीला बदन, गीले कपडे। योग साधन के समस्त कष्टो से युक्त, किन्तु कष्टो की जानकारी से मुक्त। नव-जवानो मे जो मशीन हो गये हैं, उनके लिये बरसता सावन, रक्षा-बन्धन का त्यौहार नही, बन्धन का व्यवहार है। कही आ-जा नही सकते। उठा-पटक,धूम-धाम, गडबड-सडबड नही कर सकते। बाणासुर की तरह भुजाओ का बल, और कार्य की उमग का बोझ लादे। जो भावनाशील तरुण है, उसकी आँखे आसमान में चलनी ढूढे, जिससे छन-छनकर ये सारी बूँदे बन-बनकर आ रही है। ग्रीष्म ने उन्हे, दोपहरी का श्रम-कण-गर्भित स्वाद सिखाया था, वर्षा उन्हें छाया का मौसम देने आ गई। होडा-होडी है कि उनके मन के भाव अधिक हरे है या जमीन पर ऊगते आते हुये पौधे। उनके मनसूबे ज्यादह है या ऊगी हरी-हरी घास। उनका लाल मास से बना अन्त करण विश्व के नाप मे अधिक गीला है या कूडे-कर्कट से बनी पृथ्वी का अन्त करण। बदलता हुआ मौसम, जमीन को अधिक उपजाऊ, क्रियामय, अधिक प्राणमय बनाता है, या

भावना-नरेश का भाव-कोष अधिक उपजाऊ, अधिक रचना कुशल, अधिक प्रतिभाशील है । पृथ्वी की रचना रग-बिरगी क्षण-क्षण उन्नत, और अधिक विद्रोहिनी, या भावमय मानव के कलम के खिलवाड । किन्तु प्रकृति का अनुवादक पुरुष, प्रकृति से किस तरह बाजी ले । आसमान की तरलाई जब आसमान से जमीन को पतित हो रही हो, उस समय जमीन की हरीतिमा का आसमान की ओर दौडना, मानो ऊँचो के अध पतन पर नीचे रहनेवाली दुनिया के प्रश्न-चिह्न है । आखिर महीना सावन का है । आसमान का असमान प्रभु सोगया, किन्तु पृथ्वी का हरियाला देवता, शस्य श्यामला की गोद से जाग उठा है । अभी उस दिन किसी ने कहा—"सरावण का महीना ठहरा । व्रत उपवास तो करने ही चाहिये ।" ठीक भी है । सुरज ढँका कि मानव-शरीरो मे निवास करनेवाला रोग का रावण जागा । सो सावन का महिना था ।

गायें, हरी घास भरपूर न ऊगने पर भी मस्त थी, हरीतिमा देखकर। लडकियाँ उमर के उठाव पर, जिस तरह मीठे इरादो के लॉबे झूले पर, आँखो की तरलाई से सावन-भादो बना लिया करती थी । अब तो जामन की डाल में झूला बँधा है, और गीत गा-गाकर वे पेंग बढाती है, और झले रूपी नाव पर, छन-छन इरादो के साथ ऐसी नदी के आर-पार हो लेती है, जिसके की स्नेह की सरिता की तरह, किनारे नही दिखाई देते । सो, नारी जीवन के लक्ष्य की तरह, वे किनारा न दिखाई देने वाले प्रवाह में, अपनी जीवन-नौका डालना सीख रही है । काली जमीन और मटमैले आसमान के बीच, दो ही विद्रोह है—एक हरी-हरी ऊग, और हौले-हौले झूलना । पता नही दिन के फूलने से झूले पर पृथ्वी झूल रही है, या पृथ्वी के हरी-हरी होकर झूल उठने से झूलो पर दिन के फूल खिल उठे है ।

इसी समय, मै, झाक उठी। परन्तु झाक के झाकी ही कौनसी थी जिसे मै देखती ? दिन का तीन बज रहा था, यानी गाव की बोली मे, कोई छ सात हाकनी लम्बा दिन डूबने को बाकी होगा। यह पनघट जाकर पानी लाने का समय था। मै उठी। एक ताबे का घडा और पीतल की बटलोई उठाई, और चल पडी कुएँ की ओर। पटवारिन होने के कारण, रास्ते मे जो सहेलिया मिली, उनमे से एक ने मेरी बटलोई ले ली।

चतुरिया, गाव के मुकद्दम की लडकी है।

बोली—"सावन आगया, देखो न चिडियो के जोडे के जोडे कैसे उड रहे है। और सूखे झाड पर लिपटी इस बेल मे भी कैसे हरे पत्ते आगये है।"

माया एक किसान गूजर की विधवा थी।

बोली—"शाम को, मन्दिर मे, भगवान के झूले की झाँकी देखने चलोगी, क्या पटवारिन जी ?" मैने एक उसास ली, और कहाँ—"हाँ, चली चलूँगी।"

मनुष्य की याद की बहुत बुरी आदत है। अपशकुन की तरह वह वक्त बेवक्त नही देखती। कभी बुरे दिनो मे, किसी भली बात की याद पर जी दुखता है। कभी भले दिनो मे, भली बात जी दुखा डालती है। सावन का मौसम ऐसा, जैसे हरी धरती हँसकर बोल उठेगी। परन्तु अमरसिह मोरी की बगिया मे, जो झूला दीखा कि बस सोई याद जाग उठी। क्या भैया नही आते होगे ? क्या मुझे न ले जायँगे ? क्या मै झूले न झूल सकूँगी। क्या 'बहू' पन का बोझ, मर्यादा की मटकी, बडप्पन की जजीर उतारकर, मै झूले की पेग पर न गा सकूँगी —

बिरन, मेरो सावन बीतो जाय !

हवा का झोका, आगे बढ बढ़,
लौट-लौट फिर आय ।
एक हिलोर उठे सागर सी,
आँखों चढ-चढ जाय ।
जोर, मरोर, शोर करे ऐसी,
मोसे रोकी न जाय ।

सूखे नभ में बदरवा लौटे
बदरन लौटी बीज ।
सूखी भू, हरयाली लौटी
निकस गई वह तीज ।
आँखो में पीहर की गलियाँ,
मुँह में वीर तेरा नाम ।
जी में, पीहर का मधुर झूलना,
मटमैला वह घाम ।

तेरे पास टुक बैठूँ मैं बीरन
सुख-दुख की करुँ बात ।
पूनो बीते आये न भैया,
सो मेरे वे ही दिन व ही रात ।
कागा बोल स्वागत की बोली,
मैं घट भर के जाऊँ ।
वाको सगुन करुँ मग ठाड़ी,
अपनो बीरन पाऊँ ।

कन्यादान में दी, पर मत कर,
नी से बीर बिरानी ।

स्वागत करे भरी गगरी,
भरी आँखें पीहर जानी।
देव मनाऊँ करूँ प्रार्थना,
मन राखू भरमाय।
बीते रात, सबेरे मेरा
बीरन दौड़ा आय।

हम कुएँ पर पहुँची तो, कुआँ खाली न था। कुएँ का तरल कलेजा, तरुणियाँ अपने जीवन-घटो मे खीचे ले रही थी। झट मैने भी लेज से घडे का मुँह बाधा और उतार दिया कुएँ मे। और याद लगी रही झूले मे। चढती उमर का हर वरदान, अभाव मे शाप की तरह हूल उठता है। चतुरिया ने दोनो बर्तन मेरे सिर पर रख दिये। रसरी ऊपर के घडे पर जयमाला बनाकर डाल दी। उस समय भरे घडे से मै कह रही थी कि आज तू बीरन के आने का शकुन बन जाना। रास्ते मे मन्दिर मिला, तो घडे वाले हाथ को भी थोडी देर खीच कर दोनो हाथ जोड कर मैने कहा—सीता माई, आज मेरा भाई, जरूर आवे! सावन मे भारतीय भाई-बहिनो के अन्त करण बोल उठते है। रास्ते मे चतुरिया और माया, कब अपने-अपने घरो को चली गई मुझे पता ही नही।

दूसरे दिन, मेरे छोटे देवर लाहौर से पढकर लौटे तो उनके साथ उनके एक मित्र भी आये। वर्ण श्याम, मुँह पर चेचक के दाग। ओठ मोटे। मुँह पर पाउडर लगाने की आदत, चर्रमर्र के काले जूते पहिने। गले मे, लटकती गलपट्टी बाँधते। सिगरेट पीते और अधिकतर रेशम पहिनते। रात को वे दोनो साथी हमारी छोटी कुटरिया मे कुछ दवाये निकालकर न जाने क्या-क्या बनाने लगे।

मैने डरते डरते पूछा—'छोटे कुँअर ! क्या पटाखे बना रहे हो, सावन मे पटाखो का क्या होगा ?'

वे बोले—'बना कर अभी रख देगे, दिवाली पर बच्चो के काम आवेंगे ।'

मै चुप हो रही । किन्तु मेरे मन मे कुछ सन्देह हो गया । मैंने अपने पति से, एक दिन जब वे बहुत थके हुये, मालगुजार के यहाँ से चौपड खेल कर लौटे तब बताया कि छोटे कुँअर, अपने दोस्त के साथ पटाखे बना रहे थे। वे बहुत नाराज हुये, बोले—'मै ये तमाशे, अपने घर मे नही चलने दूँगा । वह मेरे घर से निकल जाये ।'

किन्तु वह सुबह डाटने के इरादे से किसी तरह सो रहे, क्योकि रात का तीसरा पहर योही हो चला था—

सुबह ज्योही मै अपने चूल्हे की राख लेकर, बाहर डालने निकली अँधरे मे सिपाहियो की एक बडी टोली हमारे मकान के आस-पास खडी मिली । मैंने चुपचाप अपने पति को जगाया, और उन्होने कुँअरजी और उनके मित्र को । किन्तु इतने ही मे पुलिस-इन्सपेक्टर मय सिपाहियो के अन्दर आ गये, और उन्होने मेरे पति को, मेरे देवर को, उनके मित्र को और मुझ गिरफ्तार कर लिया । वह सावन की द्वादशी थी । मेरी गोद मे रामू था । मेरे हथकडी नही लगाई गई । बाकी तीनो को हथकडियाँ लगी हुई थी ।

फिरोजपुर मे मामला चला । बम बनाने और उस काम में मदद देने के अपराध मे हम सब दडित हुये । पति को ३।। वर्ष, कुँअरजी को पाँच वर्ष, उनके मित्र को दो व ' और मुझे एक वर्ष की सख्त मजदूरी की सजा हुई । मैं फिरोजपुर ही की जेल मे रखी गई, किन्तु मुझे अपने पति और देवर के दर्शन जेल मे नही हुये । हाँ, रामू ही मेरे पास था

जो जेल की सडी रोटियो पर पाला जाता था। जेल मे मैने जाना कि वहाँ स्त्री नाम की चीज सुरक्षित रहना प्राय असभव है। जेलर, नायब जेलर, हेड वार्डर, वाडर और नम्बरदार—ये सब काले साँपो के नाम है, जो मरजी पर चलनेपर अस्मत माँगते है और मरजी पर न चलने से कष्ट देते है। कायदे किताबो मे लिखने की चीज है, किन्तु जेलो मे तो जेलर ही कायदा है। जेले ऐसी बनी है मानो भाग्य बलात् सकट मे पडी हुई कुलवधुओ को वेश्या बनाने के कारखाने हो। जो अस्मत बेचना स्वीकार करे, वह सुखी, जो न करे, वह तीस सेर रोज अनाज पीसे। मै तीस सेर पीसती थी और नम्बरदारिन कुलथी नाम की एक गोड औरत के द्वारा समय-बेसमय पीटी जाती थी। भले घरो मे रहने पर, चमडे पर जो पानी आ जाता है, वही औरतो का काल है यह मैने जेल मे जाना।

एक दिन की बात, जेलर सुखनदन तिवारी, ठीक दोपहरी मे हमारी बैरक मे आया। मै उस समय लोहे के तसले मे जमीन पर गिरे उबले हुये चावलो को चुन-चुन कर खा रही थी। भूख खूब लगी हुई थी, और पेट भर खाने को न मिलता था। जेलर ने आकर कहा—"रमाबाई, आज तुम्हारे छुटने का कोई कागज़ दफ्तर मे आया है।"

और कुलथी को आज्ञा दी कि मुझे लेकर वह दफ्तर मे आवे।

आज भी सावन का महीना था। मेघराज घिरे थे। बदराह बादल भले घरो पर तो अपना अमृत बाहर बरसाते ही थे, यहाँ इस काली दीवारो के पाप-घर मे भी बेशरमी से अपनी बूँदे बरसा रहे थे। और यह हरियाली दूब, इस सकट-सागर मे न जाने किस लालच से ऊग रही थी। किन्तु मेघ थे वे। मै फिर गा उठी—

'बिरन, मेरो सावन बीतो जाय!'

और रामू को गोदी मे लेकर, चली, जेलर के दफ्तर की ओर।

दफ्तर में मेरा टिकट निकाल कर उस पर जेलर ने कुछ लिखा अंग्रेजी मे। मुझे जेल में हिन्दी मे पढना-लिखना सिखाया गया था। हिन्दी मे जो कुछ भी जेल मे जहाँ-कही लिखा मिलता मैं उसे पढ लिया करती थी। कुछ लिखने के बाद मेरे कपडे उतारे गये, जिनमे बरसात के कारण दुर्गन्ध आ रही थी। फिर मुझे तराजू पर चढाकर तोला गया। और फिर जैसा कि नम्बरदारिन किया करती, है वैसे ही अनाज के गोदाम मे ले जाकर नगा कर मेरी तलाशी ली गई। उस समय, कपडो को, नम्बरदारिन कुलथी, यह कह कर ले गई कि मै खुद तेरे पहिनने कपडे लिये आती हूँ। सालभर रोज यह कवायद करने के बाद भी उस दिन न जाने क्यो मेरा शरीर काँपने लगा, और कँप-कँपी बढी, जब मैंने देखा कि कुलटा कुलथी देर तक नही आई, किन्तु जब लौट कर आई तब मेरे जेलवाले कपडे लेकर तो नही आई, किन्तु पूछने लगी—

"मुझे तो मिली ही नही वह तुम्हारी कपडो वाली पोटली! तुमने कहा रखदी।"

और उसके पीछे-ही-पीछे जेलर आ गया। मैंने अपने को अकेली पाकर हाथ जोड कर जेलर से कहा—"देखो तिवारी भैया, यह सावन है, मै तुम्हारी लाचार बहन हूँ, मेरी रक्षा करो।"

किन्तु उस नीच ने कुलथी की ओर देखा। और कुलथी ने झपट कर मुझे गिरा दिया। मै जोर से चिल्लाई परन्तु दफ्तर से गोदाम तक लोहे के सीकचो वाले चार दरवाजे पडते है, उनपर पडे हुये ताले तोडकर स्वय मेरे साहस के सिवा और कौन आ सके? किन्तु मुझमे साहस? हा, मुझमें साहस! मैने बडे प्रयत्न के बाद अपनी अस्मत के हत्यारे का गला अपने दातो से दबोच लिया। तिवारी चिल्लाया। ज़ोर से खून

बह चला! किन्तु हाय! मेरा तो सर्वनाश हो चुका था। कुलथी भयभीत होकर जोर से चिल्लाई। जेलर साहब को बचाओ, दौडो। इसी समय अलार्म घण्टी बजी और जेल तथा पुलिस के जवानो ने, जेल मे दल बाँध कर प्रवेश किया। उन्होने बन्दूको के फैर किये।

मजिस्ट्रेट आया। मेरा बयान लिया गया। मैने मजिस्ट्रेट को सारा सच्चा किस्सा सुना दिया।

जेलर रात को मर गया। इसके बाद मुझ पर मुकदमा चला। मेरा कोई गवाह न था।

प्रारंभिक जाँच के बाद सेशन जज के सामने मेरा मुकदमा पेश हुआ। और सावन पूनो के दूसरे दिन, यानी भुजलिमो के दिन, मुझे फिर पाँच वर्ष कारागार की सजा होगई।

× × ×

नया जेलर जयनारायण खडेलवाल बहुत सावधान रहता कि मेरा अपमान न हो। मेरे शेष पाँच वर्ष, जेलर के मरने के बाद, बुरे न गुजरे।

पर मेरे जीवन के 'किन्तु' का मै क्या करू? अब मै दो बेटो की माँ हूँ। एक मेरे सौभाग्य की देन रामू, और दूसरा मेरे दुर्भाग्य की देन—श्यामू!

× × ×

मै कुलटा हूँ, या मै सती हूँ? यह सवाल मै समाज मे किससे पूछू? यदि समाज अपने पास न आने दे, तो मै कहाँ जाऊँ? चोरी या कोई गुनाह करके जेल मे या कही किसी पतित पथ की ओर?

× × ×

पाँच वर्ष की सजा काटकर जेल से छूटने के दिन यही विचार दिमाग में चक्कर काट रहे थे। जेल के फाटक के बाहर दरख्तो के पत्ते लहलहा रहे थे। रिमझिम रिमझिम फुहार बरस रही थी। जमीन गीली थी, आसमान काला। जेल की गाये, जेल के बाग मे चर रही थी। बेडिया पहिने, कैदी बाग मे काम कर रहे थे। कोयल अभी बोल रही थी। सावन का महीना था। पर अब मुझे कौन लेने आने वाला था ? मैने आम के पेड के नीचे, जेल के सामने जरा दूर पर, नाले के पुल पर बैठ कर जोर की सास ली—

'बिरन, मेरो सावन बीतो जाय !'

पति को और देवर को मै किस मुँह से ढूँढू ? और भाई को भी कौन से साहस से ?

शायद—मेरे लिये एक ही जगह दीख पडती है—बाढमयी रावी !!

बरसता सावन बैसाख हो गया

ट्रेन इटारसी स्टेशन पर रुकी नहीं कि उतरनेवालों की जल्दी और चढनेवालों का उतावलापन ऐसा मुखर हो उठा मानो लक्ष्य पर पहुँचने और लक्ष्य के लिए प्रस्थान दोनों की सम्मिलित होडा-होडी हो।

रायबहादुर मोहनलाल भार्गव उसी समय प्लेटफार्म पर दीखे और जिस तरह ढाल की ओर पानी अपने-आप सिमटकर चला आता है, उसी तरह मेरे लेखक होने और उनके मेरे भारी प्रशसक होने के सम्मेलन से बननेवाले दुर्भाग्य के कारण वह मेरे ही डिब्बे में आ गए। दुर्भाग्य इसीलिए कि युग के लेखक के रूप में अपनी बदनामी के कारण मैं लोगों द्वारा तमाशा बनाए जाने की चीज था और राय-बहादुर इतने शीलवान थे कि उम्र के बूढे होकर भी मुझ पर श्रद्धा प्रकट करने का अवसर आने पर उसे प्रकट किए बिना रह नहीं सकते थे।

गरज यह कि सस्कृत की एक कहावत के अनुसार, मेरे भाग्य की गाडी में लिखने की आदत-रूपी बेर की लकडी का पहिया लगा था और प्रजा में मीठे तथा राजमें बिके, रायबहादुर के स्वभाव के

दरवाजे पर श्रद्धा-रूपी बेर का झाड था । इस प्रकार इस व्यवहार की दुनिया मे हम एक-दूसरे के रिश्तेदार बन गए थे। जब तक भार्गवजी मुझसे प्र ाम का 'लेन-देन' करके, अपने स्वभाव की परम्परा को निबाहे तब-तक ग्राखो पर चश्मा चढाए दो नवयुवतियो ने डिब्बे मे प्रवेश किया ।

एक का रग सावला था, दूसरी गौरवर्ण। मैंने छुपी ग्राखो देख लिया कि उनमे से गोरी लडकी के हाथ मे मेरा ताजा उपन्यास 'बिखरती दुनिया' है। मुझ अजनबी को विशुद्ध विलायती कपडो और यूरोपीय वनक मे देख, दूसरीलडकी ने अपना सावारण स्वर कुछ रूखा-सा कर लिया ग्रौर कालेज की दुनिया में प्राप्त की हुई थोथी अकड का भौंडा प्रदर्शन अपने नौकर पर करके कहा—"मेरी चट्टिया जरा गीली हो गई है रामवर, इन्हें अपने गमछे से पोछकर पेटी मे रखदे ग्रौर मेरे खरगोश के चमडेवाले जूते निकाल दे।" किन्तु उसकी बहन ने मानो इस स्वभाव को रोकने के लिए मेरी पुस्तक का पन्ना खोल कर बहुत आहिस्ते से ग्रौर उसे खूब सम्हालकर उसे दिखाया। शायद उसने मेरा चित्र उसे दिखा दिया और इस तरह बिना बोले मेरा परिचय देकर उसके फूहडपन को मर्यादा की लगाम लगा दी।

जब से लडकियो ने डिब्बे में प्रवेश किया मै भी 'करेन्ट हिस्ट्री' नामक ग्रग्रेजी-मासिक पढन का स्वाग भर रहा था, मानो ज्ञान की सावना मे ध्यान-मग्न योगी हूँ। किन्तु मेरी ग्राखे उस समय मेरे कानो पर आ बैठी थी। मै सुनकर देख रहा था ग्रौर देखने की उन्ही ग्रगुलियो से वातावरण को छू रहा था, मानो, इतने ही में सारा छायावाद गद्य हो गया ।

रायबहादुर ने ग्पनी श ा-विनि दित ध्वनि मे अपनी ग्रोर

मेरा ध्यान खींचते हुए कहा—"हरिकिशनजी, ये दोनो मेरी बेटिया है।" साँवली लडकी की तरफ इशारा करते हुए उन्हो ने कहा—"वह मेरी छोटी लडकी है—निर्मला। क्रास्थवेट गर्ल्स कालेज मे तीसरे वर्ष मे पढती है और यह मेरी लडकी है   "

उसी बीच फ्रांटियर मेल के आने के कारण देर तक खडी रहनेवाली कलकत्ता मेल के लेट होने से लाभ उठाकर इटारसी स्टेशन का फलवाला चीख उठा—"बाबूजी, अनार लोगे ? बहुत बढिया, ताजे, मीठे, बेदाना।" तभी हाथ जोडकर दूसरी लडकी ने कह दिया—"जी मुझे कमला कहते है।"

"वर्माजी, यह मालवीयजी महाराज की युनिवर्सिटी मे पढती है और आक्सफोर्ड जाने के लिए आसमान सिर पर उठाए हुए है।" रायबहादुर ने 'जा, जा' की आवाज से फलवाले को झिडकते हुए, अपना वाक्य पूरा करने के लिए मेरी ओर पुन मुखातिब होकर कहा।

रेल के गिरते-उठते सिगनलो की तरह प्रणाम-प्रथा मे लडकियो के गिरते-उठते हाथो का जवाब उसी सभ्यता और उसी व्यवस्था मे देकर, मै लडकियो की ओर मुखातिब हो गया, मानो मै उनसे कुछ सुनना चाहता हूँ।

बोलने की कला मे हम अपने हृदय को छिपाना इतना सीख गए है कि हम केवल लापरवाही भरे मौन ही मे अपने को अधिक व्यक्त कर पाते है। चौकन्ना मौन भी हृदय छिपाने मे कम सहायक नही होता। मैने 'करेन्ट-हिस्ट्री' मे अमरीका की 'न्यू हिस्ट्री सोसायटी' की छोटी-सी चौपतिया मार्कर की तरह रखकर उस मासिक को इस तरह बन्द करके रखा, मानो अध्ययन के देवत्व

से उतरकर उन लडकियो के लिए समय खराब करने का अपराधपूर्ण त्याग मुझे जबरदस्ती करना पड रहा हो। मैंने प्रश्न का आधा भाग निर्मला की तरफ, उसका थोडा-सा अ्रश अपने दाहिने हाथ की हथेली की हस्तरेखाओ की तरफ और उसका शेष सम्पूर्ण उत्तरार्ध कमला की तरफ देखते हुए पूछा–"आज आप लोग कहा जा रहे है ?" कमला ने कहा–"मै जबलपुर जा रही हूँ, मेरी एक मित्र की शादी है।" निर्मला बोली–"मै कलकत्ता जाऊँगी और वहा एम० सी० सी० का मैच देखकर शाति-निकेतन चली जाऊँगी। पापा सतना मे उतर जाएँगे।"

मैंने अत्यन्त प्रतिष्ठा और सभ्यता से अपना सिगार निकालते हुए निर्मला से पूछा–"ओ हो, तो आप अकेली आधा हिन्दुस्तान छानेगी ?"

निर्मला–"उसमे आश्चर्य की कौनसी बात है ?"

कमला–"और वह भी आपको ? आपके 'बिखरती दुनिया' की बेलारानी, तो अपने कालेज के साथी के साथ लदन जाती है।"

रायबहादुर भी इस समय चुप न रहे, बहुत मीठे लहजे मे किन्तु सुलभ डक मारने की मनोवृत्ति के साथ, अपनी पुत्री कमला को लक्ष्य कर बोले–"सगमरमर के बने महल में भी किसी कोने मिट्टी के चूल्हे तो होते ही है कम्मू। इसमें हरिकिशनजी का क्या अपराध है ? हिन्दू-समाज का दोजख तो उसी तरह का बना हुआ है।"

मै इस समय रेलवे कम्पार्टमेंट मे सयोग से बननेवाली इस कहानी को ही सुनना चाहता था। अपनी बात कहकर तीन स्वभावो के तिरंगे विक्षेप की त्रिवेणी बनने देना मुझे अभीष्ट न था।

मैंने देखा कमला को अपने पिताजी की चुटकी पसन्द न थी। निर्मला इस तरह मुसका उठी, मानो वह अपने पिता के ठेठ पुराने

शक्ल देखते हुए बोले—"सच बात तो यो है वर्माजी कि आप लोग किताब मे लिखते है और हम लोग उसपर अमल करते हैं। बारीक-खयाली या आजादी को जबान या कलम पर उतारना एक बात है मगर उसे अपनी जिन्दगी पर उतारकर जिल्लते, परेशानिया और अपमान आमन्त्रित करना एक बिल्कुल दूसरी बात। सच मानिए राम न हो तो रामायण किसे कहें ?"

इस तरह मीठी जबान,सभ्यतापूर्ण व्यवहार और मेरे प्रति रहने-वाली श्रद्धा के त्रिकोणकृति घेरे में मेरी अवज्ञा रायबहादुर का उपदेश बनकर बढी चली आ रही थी। मेरा मन उस समय मुझमे कुछ ढूंढने लगा। भार्गवजी की बात से यह मालूम हो चुका था कि उनकी दोनो लडकिया कुआरी है। मैंने रायबहादुर से डरते-डरते कहा—"जवानी की अल्हडता से इनकार तो नही किया जा सकता। आखिर हम नौजवानो को आप-जैसे बूढो से ऐसी बातें तो पूछ ही लेनी चाहिए जिससे पता चल जाए कि कही हम गुमराह तो नही हो चले।"

रायबहादुर को यह समझौता भी स्वीकार न था। बोले—"मै अपनी लडकियो पर सन्देह कर ही नही सकता। बाल डान्स मे सिनेमा मे, और अफसरी मजमो मे ये हर जगह जाती है। पार्टियो मे अपने मनमाने टेबिलो पर, मनचाहे साथियो के साथ बैठती है। आखिर एजूकेशन के मानी क्या है, वर्माजी ? सरस्वती, लक्ष्मी, दुर्गा न कोई थी, न कोई होगी। वे सब ये ही इस जमाने की पढी-लिखी लडकिया है। इनका मुसकुराना, हँसना, मिलना-जुलना, इसीसे तो समाज की आगे की परम्परा बनेगी।"

मैंने मानसिक सतह के आगन मे खडे होकर, ईश्वर से एक ऐसी कल्पना उधार देने की माग की जो इस समय रायबहादुर का प्रश्नपत्र

बन सके। भिखारी को भीख न मिलने से शायद ही इतनी कडवाहट महसूस होती हो, जितनी चिन्तन-सेवक को, कठिन परिस्थिति मे कुछ सूझ न पडने से हुआ करती है। मै खुली ग्राखो अनदेखता-सा बैठा था कि निर्मला ने अपने फलो के झाबे मे से चीकू छील-छीलकर मुझे देना शुरू किया ग्रौर कमला ने सेव तराशकर मेरी चादर पर तश्तरी रखदी ग्रौर हस-हसकर खूब बाते करने लगी ।

मैं मुसकुराता ही नही था, खिल-खिलाता भी था। मेरा आत्मभिमान यह गवारा नही करता था कि मै रायबहादुर के द्वारा होनेवाली अवज्ञा के बावजूद भी फल खाने से इनकार कर दूँ क्योकि फलो के मिठास के साथ मै पाए हुए अपमान को स्वादीला बना लेना चाहता था ।

तभी गाडी एक नदी पर से गुजरी ग्रौर उससे दूर बडा लम्बा बोगदा (सुरग) दीखा। उस अपमान से मुझमें एक बेकाबू उद्दडता का भाव जागा। ज्योही बोगदे का अधेरा आया ग्रौर मेरे डिब्बे मे बिजली के अभाव में एक दूसरे की शक्लें दीखनी बन्द हुई त्योही मैने बोगदे के बीचोबीच पहुचकर 'करेन्ट हिस्ट्री' की किताबको उठाकर सुनाई पड सकनेवाले स्वर मे जोर से चूमा ग्रौर चुपचाप रख दिया।

बोगदे से ज्योही गाडी बाहर आई ग्रौर स्टेशन आने को हुआ त्योही बरसता सावन फिर बैसाख हो गया। कमला निर्मला को क्रोध से घूर रही थी, निर्मला कमला को घृणा से देख रही थी ग्रौर रायबहादुर लाल चेहरा किए अपनी दोनो लडकियो को बारी-बारी से भाप रहे थे।

मेरा स्टेशन आ गया। बरस से अधिक महगे पडनेवाले उन दस मिनटो के बाद मै उतर आया। मुझ से कोई नही बोला ।

मैं अपनी 'करेन्ट-हिस्ट्री' वाली पुस्तक वहीं छोड़ आया, वही वहा छूटने की हकदार थी। चूँकि इस महाप्रलय के अन्तिम अध्याय मे उसका भी पचास फीसदी हिस्सा था, मैंने उसपर पेन्सिल से रायबहादुर के प्रवचन का यह वाक्य उद्धृत कर दिया था–'बारीक खयाली या आजादी को जबान या कलम पर उतारना एक बात है, मगर उसे अपनी जिन्दगी पर उतारकर जिल्लते, परेशानी और अपना अपमान आमन्त्रित करना एक बिलकुल दूसरी बात।'

महँगी पहिचान

वह जाडे मे बरसात का दिन था ।

पानी, आँधी भी, जाडा, थरथराहट, बिस्तरा बहुत प्यारा, किन्तु वह भी ठडा ।

पैसेन्जर गाडी, सोचा था, आधी रात को घर से मेल पकडने से, तो रास्ते मे कही बदल लेना अच्छा होगा । सो, पैसेजर गाडी ।

जीवन का मूल्य कूतने की उचित जगह । वे आते है, वे चले, और वे चले गये । वे मुझे जानते है, किन्तु उँह, कौन बोले, मै बोलूँ तो शायद उनका उपेक्षा का लिहाफ उघड जाय। सर्दी जो पड रही है। एक है, गो जानते बिलकुल नही, किन्तु वे अवसर को हाथ से कैसे जाने दें। भला अपना स्टेशन आने पर कोई उतरना भूलता है !

'प्रणाम जी !'

'प्रणाम साहब !'

'आज आपके दर्शन पाकर बडी प्रसन्नता हुई ।'

'कृपा है आपकी ।'

'आपका देवत्व प्रसिद्ध है ।'

'जी मैं उसी को नही जानता।'

'किसे ?'

'देवत्व को !'

एक मुसाफिर की ओर मुखातिब होकर—

'ये महान योगी है। बड़े साहित्यिक है। हिन्दी मे तो दुनियाँ इनका लोहा मानती है ।'

'आप बैठ जाइये, तो लोग मेरा और आपका साथ-साथ लोहा मानने लगेंगे।'

'मैं मजाक नही करता, महाशयजी।'

'पर मुझे तो मजाक करने दीजिये कृपानाथ !'

''लिलार की चौखट' के पश्चात् आपने कुछ और लिखा ?'

'जी, 'लिलार की चौखट' नही, 'ललाट की रेखाएँ'—जी, दो ही किताबे छपी है।'

'जी भूलगया। 'ललाट की रेखाएँ', जरा उनके मिलने का पता लिखा दीजिये और ।'

बार-बार खिडकी से बाहर झाँके ! सन्देह, बेचैनी, कौन है ?

ओह, टिकट कलेक्टर !

'अरे सप्रे तुम यहाँ ?'

'जी, मै तो बीना-कटनी लाइन मे ही बूढा हो गया।' फिर उससे—'टिकट महाशय ?'

वे मुझसे बोले, 'दस रुपये का नोट है, चेज दे दे, प्राण बच जाये।'

मैंने 'सप्रे' से कहा—मैं दे दूं ? कोई वक्त का मारा है—

आप बोले—'मुझे अहसान नही चाहिए। जहर हजम कर सकता हूं, किन्तु अहसान नही।'

मैंने कैलाश से कहा—'पैसे दे दो।' गिनकर फुटकर दे दिये। उन्होंने टिकट कलेक्टर को तीन रुपये बारह आने दे दिये।

अगला स्टेशन। मैंने पैसेन्जर से मेल बदलना चाहा। बीना से ग्वालियर, दस-दस के चार नोट, और कुछ और।

कैलाश के साथ पुलीस वाला—"जालीनोट' आपने दिया था ?'

और यह प्रश्न बूढे शरीर, खादी वस्त्र, और समूचे आदर्शवाद पर।

कैलाश—'बडे मक्कार लोग होते है !'

'क्यो ?' खादीवाले को यह प्रश्न किया जाता है। क्या खादी पर मक्कार होने का विश्वास, कोई छोटी चीज है ?

मानो, वैष्णव गोमास खाता है ?

किन्तु क्या मै यह नही जानता, कि खादी पहिनकर, युग का 'मै' क्या-क्या करने लगा हूँ ?

यह रोजगारी शोहदे का समर्थन नही है, वेष के रोजगारी होने पर पडनेवाली जूतियाँ है।

मेरा स्टेशन आ गया। रेल के डिब्बे के लोगो ने उच्चस्वर से कहा—'महात्मा गाँधी की जय।'

मैंने सर नीचा कर लिया !

वन्य-प्रदेश

प्रवेश

आगन्तुक—‘बडे कष्टो से यहाँ तक आई हूँ।’

आम—‘क्यो बहिन ?’

आगन्तुक—‘बडे कष्ट भोगे है।’

आम—राम राम ! कैसे बहिन ?

आग०—‘गरीब माँ-बाप की बेटी हूँ।’

आम—‘हम भी गरीब ही है बहिन ! मजे मे तो हो ?

आग०—‘मजे मे ! मेरी क्या-क्या दुर्गति नही हुई !’

आम—‘भला ! किन कष्टो मे पड गई थी ?’

आग०—‘मुझे मेरी माता की गोद मे से छीना !’

आम—‘छीना ? किसने छीना ? क्यो छीना ? कब छीना ?’

आग०—‘मनुष्य ने, स्वार्थ के लिये, युग बीत गये !’

आम—‘मनुष्य ! पापी मनुष्य ! फिर—’

आग०—‘फिर मै बडे-बडे भट्टो मे जलाई गई।’

सागौन—‘अब मत सुनाओ बहिन !’

इमली—'कहो बहिन, फिर ?'

पीपल—(इमली से) 'दूसरो का दुख सुनने मे क्यो जी लगाती हो ? क्यो भला मालूम होता है ?'

बेर—(पीपल से) 'मजा आता है !' (आगन्तुक से) 'अजी तुम कहो चुप क्यो होगई ।'

आम—'उसके हिये का वजन सा उतर जायगा। दुख के दुख की बाते सुनलो ।'

बबूल—'अजी जाने भी दो, कहाँ की बातो म पडे हो ।'

आम—'कहो बहिन ।'

आगन्तुक—'जब मै खूब जलाई जा चुकी, तब मै बडे-बडे घनो से कूटी गई !'

आम—'सुनो ! सुनो !'

आगन्तुक—'पर, जब तक मेरा शरीर पूरा झुका नही, मै बराबर भट्टो मे झोकी जाती और हथौडो की मार खाती रही। मेरे लाल मुँह पर, उस समय तक चोटे मारी जाती, जब तक वह काला न पड जाता ।'

पलाश—'ओह ! सुना भाई शिरीष, यह बेचारी पहले बडी सुर्ख रही होगी ।'

शिरीष—'तुम सुनते चलो !'

आम—'पापियो ने छोडा कब बहिन ?'

आगन्तुक—'उन्होने मेरे कण्ठ को ऐसा बेधा, जैसे फाँसी दी जाती हो। यह गले का छिद्र देखती हो ।'

पीपल—'पापी कही के !'

आम—(आँसू भर कर) 'ओह !'

सागौन—'मुझसे तो सुना नही जाता, बहिन ! आखिर उन पापियो ने छोडा कब ?'

आगन्तुक—उन्होने मेरे मुँह को पानी मे डुबो-डुबोकर फिर जलाया, फिर कूटा।'

आम—'कूटा सा नही लगता, मुँह तो सुहावना है बहिन। बडी प्यारी दीखती हो।'

इमली—'देखना भगवान के लिये!'

आगन्तुक—'नही जी यह तो रोगनवाला पानी लगने से चमक रहा है।'

सागौन—'कैसी बाते करती हो, परसो जो राजकुमार घोडे पर चढा गया, उसकी तलवार की मूठ तुम्हारे मुँह जैसी चमकती थी।'

आगन्तुक—'नही वह चाँदी की होगी।'

सागौन—'तब तुम ?'

आग०—'मै तो लोहे की हूँ।'

पलाश—'लोहे की ? तब कलूटी रूप का गर्व क्यो करती थी।'

आम—'सभ्यो जैसे बोलो।'

शिरीष—(पलाश से) 'हम असभ्य लोग चुप ही क्यो न रहे ?'

इमली—(आगन्तुक से) 'तब तो तुम भीतर से काली होगी।'

बेर—'हाँ, तुम्हारे बीजो जैसी ! क्यो जीजी ?'

इमली—(बेर से) 'चुपका रह, छोटा मुँह बडी बात !' (फिर आगन्तुक से) 'हाँ, क्यो जी, भीतर ?'

आगन्तुक—(इमली से) भीतर की भगवान जाने।'

(फिर आम से) 'हाँ तो आम भैया मै यहाँ विपद् की मारी आई हूँ।'

इमली---(स्वगत) 'जा उसी की गले लग। मुह लगाने की देर है कि ओछे सिर चढे।' (आगन्तुक से) 'मुझे तुम्हारे साथ बडी सहानुभूति है, जाओ, जरा देर, इस पास के बाग में विश्राम करो, वहाँ ठण्डी जगह है, बादशाह का बाग है, माली होगा, जरा ओट मे, चमेली की कुजो मे छुप रहना।'

आगन्तुक---'नही भाई, 'फोरे जोग कपार हमारा।'

पलाश---(शिरीष से) 'पर वह घनो से भी तो फूटा है? क्यो जी?'

आम---'क्यो बहिन ?'

आग०---'मै तो तुम्हारी शरण आई हूँ। दुखिया हूँ, दीना हूँ। पर मेरी कोई नही सुनता। पीपल अलग ही फडफडा रहा है, बेर अलग ही बर्रा रहा है। मै किसके पास जाऊँ? किसको हिये की सुनाऊँ? तुम पथिको मे से तपे हुओ को खीच कर अपनी गहरी छायावाली गोद मे ठण्डक देते हो। और भूखो को अपने मीठे फलो से तृप्त करते हो। यह भी देखती हूँ कि तुम्हारी आराधना पत्थरो से की जाती है, किन्तु ऐसो के लिये भी न तुम्हारी छाया मे कमी होती है, न फलो के रस मे ही। उसमें कडुआपन नही आता। मेरी आराधना तो एक सेविका की तरह शरण मे आना है। क्या मै तुम्हारी दया के दिव्य द्वार मे प्रवेश न कर पाऊँगी?'

शिरीष---(स्वगत) 'दरवाजा टुकडे-टुकडे न होजाय।' (प्रकट आगन्तुक से) 'अजी इस पीपल को तो अपने 'गणानान्त्वा गणपति गुहवा' से कभी फुरसत नही मिलती।'

पलाश---'साथ ही वह जगलियो के 'पब्लीसिटी ब्यूरो' का सेक्रेटरी है, फडफडावे क्यो न ?'

आग०---'अर्थात्।'

शिरीष—'अर्थात् डुग्गीवाला भी है। जो बाते तुमने यहाँ कही, बस उसने सारे जगल मे हम लोगो की जबान मे सब कह सुनाई ।'

आम—(आगन्तुक से) 'तो बहन तुम जो कहो, सो मै करने को तैयार हूँ।'

आग०—'मेरे हाथ-पॉव तो है नही ।'

इमली—(स्वगत) 'कौन वर ढूढने जाना है।'

आम—(आगन्तुक से सहानुभूति प्रगट करते हुए) 'हाँ बहिन, कष्ट में तो हो ।'

आग०—'कण्ठ मे देखो कितना बडा छिद्र है।'

आम—'हॉ है तो, यह पापी मनुष्यो के पाप का स्मारक है।'

आग०—(स्वगत) 'और तुम्हारी जड-पीड से घातक भी। (प्रगट) वस इसी से मेरी प्रार्थना है, यदि तुमसे कोई बलवान, अपनी भुजा का सहारा दे दे तो मेरी जिन्दगी बन जाय। साधु-कपास मनुष्य जाति की लज्जा की रक्षा करता है।'

आम—'यह कौन सी बडी बात है।'

आग०—'मै तुम्हारे हाथ जोडती हूँ और पैर पडती हूँ, शरण में आई हूँ, दूर से। इज्जत से चल फिर सकने पर, मेरा जीवन तुम्हारे प्रति रहने वाली कृतज्ञता का सजीव स्वरूप होगा। मुझे केवल अपना एक छोटा सा टुकडा दे दो। मजबूत भुजा का सहारा मिले।'

पीपल—'परोपकार पुण्याय।'

इमली—(पीपल की ओर मुँह करके) 'य पर पर एव स' (आगन्तुक से) 'अब हमारी सलाह होगी। तुम जाओ।'

मसलहत

आम—'क्यो भाई क्या राय है? साफ साफ कहो, बनावट न हो।'

पीपल—'दुखी का दुख जरूर बॅटाना चाहिये ।'

शिरीप—(पलाश से) 'इसके दाँत देखते हो।'

पलाश—(स्वगत) 'हडम्बा कही की! घूर-घूर कर देखती कैसी है, मानो हमे खाने आई है।'

इमली—(गभीरता से) 'भाई अचानक आने वाले पर भरोसा करे सो पशु।'

शिरीष—'हमारा अनुमोदन।'

पलाश—'डिटो।'

पीपल—'हमारा विरोध, दुखी को सहारा देना चाहिये।'

बेर—'जीजी' तुम तो स्त्री जाति हो। तुम इतनी पत्थर क्यो होती हो?'

इमली—'मै ठीक कहती हूँ।'

आम—'खूब सोच लो। आश्रित तो जरूर है। अधिक सहारा भी नही चाहता। थोडा सा दे देना होगा।'

आगन्तुक—(आगे बढकर, लौट कर) 'बिलकुल थोडा सा बाबा।'

बबूल—'इमली ठीक कहती है।'

खैर—'हमारी भी यही सलाह है।'

बेर—'निष्ठुर कही के!' (पलाश से) 'क्यो जी?'

पलाश—'चल दूर हो! लिपट मत पडना! तेरे परसो के आलिगन के कॉटे, ये अभी तक बीनता हूँ। नही जी मै इस अक़्ल-मदिनी का हामी नही, तुम्हारी बात सच है।'

आम—'सच कैसे? कोई सबब है?'

खैर—(आगन्तुक से) 'यह समय तुम्हारे चुप रह कर सुनने का है।' (आम से) 'मुझे तो तुम्हारी उदारता से डर मालूम होता है। परसो तुमने उस राजकुमार को बत लेकर निशिगन्ध क्यारियो में

जाते समय हमे नही रोकने दिया, उसने क्रोध मे आकर बेत से सब कोमल झाडो के गले काट डाले ।'

बबूल—'और अपनी ही भुजा से, आपने फौजी अफसर का घोडा बँधवाया था, बस भुजा ही खो बैठे ।'

जामुन—'बरगद ने उस महन्त के हाथी को शरण दी। मैने उसी के कहने मे आकर, अपने कोमल पत्ते उसे तोडने दिये। तकदीर की बात, उसने मेरी बडी-बडी भुजाये तोड दी ।'

इमली—'इसके प्रति दया करने का नतीजा न जाने कैसा हो ।'

पलाश—'क्यो जी, इसके गले से आर-पार दीखता है, इससे इसकी बात का कोई ठिकाना नही। और इसके दाँत तो बडे-बडे है ही ?'

पीपल—'परन्तु बह जाने के डर से गगा-स्नान कौन छोडता है ?'

इमली—'जी तोभी, अनजानसे, गहरे मे, बेसमझे गहरी डुबकियाँ लगाने ही से, गगा-स्नान का पुण्य नही मिलता ।'

शिरीष—'इसलिये हम कहते है कि वह हमारी छाया-गगा मे, और हम उसकी दर्शन-गगा मे स्नान करे। उसकी माँग-गगा मे कौन कूदे ।'

पलाश—'पाव दर्जन गगाये तो हो गई ।'

खैर—'हाँ, उसकी आकाक्षा की खाई मे, बिना समझे-बूझे, गोता लगाने के लिये हम मे से कोई आगे न बढे ।'

आम—'उसकी माँग अस्वीकृत की जावेगी ?'

खैर, बबूल, जामुन—(एक साथ) 'हाँ ।'

पलाश—'डिटो ।'

आम—'किस अपराध पर वह दुःख भोगिनी है, मनुष्यो ने उस पर अनत अत्याचार किये है ।'

शिरीष---'वे मनुष्य आम ही के मधुर फलो से सतुष्ट हुये है ।'

पीपल---'कृष्ण ! कृष्ण !'

इमली---(पीपल से) 'आप ही के पुराणो से बहकाये जाने पर, अपना गला कटाने वाले गेहुओ और चनो को खाकर, वे मनुष्य सतुष्ट हुये है ।'

पलाश---(पीपल से) 'आप तो इस समय 'सुमुखश्चैक-दन्तश्च' पर फिदा है ।'

आम---'कोई सहारा न दे, मै देता हूँ---'

जामुन---'कृपा करो, कहा मानो---'

इमली---'कही तुम्हारी दया का दड समस्त पादप-परिवार को न भोगना पडे ।'

आग०---'(आम से) नही भैया, तुम्हे कष्ट नही दूँगी । तुम सन्त हो । सभी तुम्हे सताते है ।'

इमली---'तो तुम और कही घूम आओ बहिन ! हम जब तक मसलहत करते है ।'

आम---'हाँ, तुम घूम लो बहन, हम शरण देने की कोशिश करेगे ।'

आग०---अच्छा घूम लेती हूँ । भैया मै तुम्हारी शरण हूँ । दुखिनी के देवता तुम्ही हो (जाने लगती है) ।

जामुन---'बहन, तुम्हारा नाम ?'

आग०---'पूछकर क्या करोगी । मै तुम्हारी गुलाम हूँ। दाँतो से भूमि खोद कर, भीख माँगती हूँ ।'

जामुन---'नाम बतलाओ पुकारने मे काम आयेगा !' (सब उसकी तरफ देखते है, वह थोडी देर चुप रहने के बाद कहती है)

आग०—'मेरा नाम छोटा सा है, कुमारी परशु। गरीबिन हूँ भैया।'

सब—'परशु !'

(सन नाम सुनकर चौकते हैं)

पलाश—'वाह क्या मनोहर नाम है।'

भेद

(कुमारी परशु इधर-उधर घूमती हुई बेर के पास जाती है, वह पुकारती है।)

बेर—'अजी सुनोगी कहाँ छलाँगे मार रही हो।

परशु—'आई बहन, भला ! तुम्हारी छाया तो बडी मनोहर है।'

बेर—'नही जी मेरी छाया की कौन प्रशसा करता है ?'

परशु—'वाह ! न अधिक धूप न अधिक ठन्ड। सर्दी के दिन ठहरे।'

बेर—(स्वगत) 'कितनी भलीमानस है मेरे गुणो को जानती है। (प्रगट) बहिन मै तुमसे एक बात कहूँ ?

परशु—'कहो बहिन ! अहा ! तुम्हारे फल कितने मीठे है।'

बेर—'मेरे जी में एक आग जल रही है।'

परशु—'अच्छा ! कैसी ?'

बेर—'ये सब लोग मुझसे नफरत करते है।'

परशु—'क्यो ? बुरा कहते है। मुझे चाहे कोई कुन्द अक्ल ही भले ही कहे, मुझे तो तुममे नफरत करने लायक कुछ नही दीख पडता।'

बेर—'पास ही यह केले का झाड देखती हो न, इसे मै प्यार करने लगी। इसके फल बहुत रसीले तो नही, पर मेरे फलो जैसा कुछ

स्वाद होता है। फलने में यह भी अभागा, जिन्दगी मे एक ही बार फलता है। सो भी थोडा सा। लोगो को इससे बडी शिकायत है। परोपकार तो जानता ही नही, बिकता है महँगा। पर एक तो पास पाकर, दूसरे अपने जैसा एकाध गुण देख कर, और तीसरे लोगो को, अपना कृतज्ञता-भाजन बनाये रखना जरूरी है। यह जानकर मैंने कहा, आओ हम तुम हिले मिले।

कुमारी परशु—'अच्छा किया!'

बेर—'अजी क्या अच्छा किया। कायर कही का। रो पडा। बोला—'तू वहाँ पधार, तेरे प्रेम से मेरा पेट फट गया, तू ने मेरी छाती फाड डाली, सब अग फाड डाले।'

कुमारी परशु—'ऐसी कृतघ्नता उसे न करनी थी, प्यार का बदला घृणा नही होता।'

बेर—'अजी ये पुरुष होने ही बडे वैसे है, तिस पर यह निखट्टू तो अपनी सुन्दरता पर मरा जाता है।'

कुमारी परशु—'इसे सुन्दर कौन कहते है?'

बेर—'वे ही स्वय प्रशसित पुरुष महाराज! कहो इस घृणा को मैं कैसे बरदाश्त करूँ?'

कुमारी परशु—'केले की बात जाने दो, पुरुष तो तुम्हारी छाया मे आकर फल खाते है, वे तो कृतघ्न न होगे?'

बेर—'नही जीजी, एक पुरुष की बात सुनो। उसने सुबह से दोपहर तक मेरे फल खाये, जाते समय एक छोटा सा काँटा लग गया। बोला, बडी मुश्किल से निकलेगा, दुष्ट बेर का यह काँटा!

कुमारी परशु—वह कोई देहाती होगा।'

बेर—'शहर के और भी पापी! एक शहर वाला बीमार होकर यहाँ से गुजरा। मेरे निकट के आम के झाड के नीचे उसकी डोली

उतारी गई। उसे कही चिकित्सा के लिये ले जा रहे थे। बेचारा खूब भूखा था। आम के पास उसकी कच्ची अमियाँ लगी थी, पर उसने एक न टपकाई। पर मै इतनी निठुर कैसे हो जाती? हवा के गहरे झोको से मेरी डाली हिली। मैने धीरे से अपने तीन-चार फल उसके निकट गिरा दिये। वह फल खा गया। वह अभागा बेहोश होगया। उसके साथी पास आये, कहने लगे बेर खाने से यह हुआ।'

कुमारी परशु—'यह लो!'

बेर—'अजी एक कोई वैद्य और पडित दीख पडता था। मोटर का चक्का अपने सिर से लपेटे था।'

कुमारी परशु—'मोटर का चक्का!'

बेर—'हाँ जी बडी भारी पगिया, वह बोला क्यो नाहक यहाँ डोली उतारी—"कुपथ्य बदरी फलम्।"

कुमारी परशु—'राम राम!'

बेर—'इसके बाद, यह सारा जगल मुझे धिक्कारने लगा, बोला तूने उसके प्राण लिये। बहिन मै परोपकार करने से कैसे चूकती! बस इसीलिये मुझे इन लोगो से नफरत है!'

कुमारी परशु—'बेचारे बुरे तो नही है। पर तुम उन सबमे समझदार दीखती हो।'

बेर—'क्या मै तुम्हारे काम आ सकती हूँ।'

कुमारी परशु—'ज़रूर!'

बेर—'पर दो बाते माननी होगी।'

कुमारी परशु—'कौन कौन?'

बेर—'एक तो तुम्हे यह दिखाना होगा कि तुम्हे सहायता देने

से मुझे क्या मिलेगा, दूसरे, मै इन सबको, इनकी कृतघ्नता के लिये रुला सकूँ, ऐसी युक्ति बतलानी पडेगी।'

कुमारी परशु—'मै तो बहिन ऐसी कोई युक्ति नही जानती कि कृतघ्नता करने वालो को रुला सकूँ, हाँ,तुम यदि कोई युक्ति निकालोगी तो उसमे साथ दे सकती हूँ, इसके सिवा इन लोगो की बातो पर ध्यान न देना चाहिये। "तुलसी बुरो न मानिये जो गवाँर कहि जाय" और मिलने की पूछती हो, सो मेरे पास है ही क्या ? मै खुद तुम्हारे दरवाजे घुटने टेक कर—'

एरण्ड—(स्वगत) 'घुटने है भी !'

कुमारी परशु—'भीख माँगती हूँ। पर यह तो बताओ, इस जगल मे तुम्हारे परिवार के कोई है ?'

बेर—'है क्यो नही, पर दूर है बेचारे। यदि हम इकट्ठे होते, तो क्या इन निगोडो की बातें मै सुनने चली थी।'

कुमारी परशु—'दूर हो वे, मै उनसे मिला सकती हूँ।'

बेर—(आश्चर्य से) 'सच ?'

कु० प०—(गम्भीरता से) 'बिल्कुल सच, यदि तुम्हारे सामने से चलने-फिरने लगूँ तो यह काम कल ही कर दूँ।'

बेर—'पहिले मेरी चाची को लाना वह बूढी है, उस महुए क पेड के बगल की सडक पर है।'

कु० प०—'जरूर !'

बेर—'फिर मेरे बेटे-बेटियो को बुला देना, वे यहाँ से तीन मील पर नासगाँव मे एक महन्त के दरवाजे पर है।'

कु० प०—'जरूर ! जरूर !'

बेर—'तो बहन एकाध को लाकर बता दो, तो मैं तुम्हे मदद अभी देती हूँ।'

कु० प०—'अजी जरा सी मदद पर इतना अविश्वास। मैंने कह न दिया कि मदद के बिना मुझसे चला नही जाता। कहती हो तेल फिर ले जाना पहिले अपने बेसन के भजिये खिला दो। अच्छा अब उस मसलहत का तत देख आऊँ।'

बेर—'नही मत जाओ बहिन।'

कु० प०—'तो क्या करूँ?'

बेर—'बहिन मुझे भय यह है कि कही मुझ पर कोई आफत तो न आ जायगी।'

कु० प०—'मै तो तुम्हारे परिवार भर को इकट्ठा कर देने को कहती हूँ जिससे तुम्हारा बल बढ जाय। कहो तो मै भी तुम्हारी ही छाया मे धूनी रमाती रहूँ।'

(दूर से पीपल की आवाज)

पीपल—'कुमारी परशु चलो फैसला सुन लो।'

कु० प०—'जाती हूँ, सुनूँ तो क्या कहते है।'

बेर—'जाओ मै भी खडी सुनती हूँ, पर तुम मानना मेरी बात।'

कु० प०—'अच्छा' (मसलहत मे पहुँच कर) 'कहिए!'

आम—'मै अपनी डाली देता हूँ।'

पीपल—'मै अपनी शाखा दता हूँ।'

एरण्ड—'हम भी प्रस्तुत है।'

पलाश—'हमारा सलाम बाई साहब।'

शिरीष—'फले तब एकाध फूल मै भी दे दूँगा।'

बबूल—'हम कुछ नही दे सकते।'

जामुन—'मै बबूल साहब की आज्ञा से बाहर नही।'

इमली—'मै खुद तुम्हारी मदद चाहती हूँ, वह यह कि तुम इस वन्य-प्रदेश पर कृपाकर यहाँ पर किसी को छेड़े बिना चली जाओ।'

पलाश—'बडी कृपा होगी।'

शिरीष—'साधु साधु!'

कु० प०—'यह फैसला कहाँ हुआ? कितनी मत भिन्नता है।'

बेर—(दूर से) आम दादा! कहो तो मै दे दूँ।'

आम—'नेकी और पूछ-पूछ, देदो बहिन।'

पीपल—'शुभस्य शीघ्रम्।'

जामुन—'अरे क्यो यह 'अव्यापारेषुव्यापार'?' (बेर एक डाली देती है)

कु० प०—'धन्यवाद।'

इमली—'देखो बहिन विश्वासघात न हो।'

आम—'और कोई तकलीफ मत पाना, जरूरत पडे आ जाना।'

बेर—'बहिन इनकी क्रूरताये भूल मत जाना।'

कु० प०—'मै चलती हूं। प्रणाम!'

बेर—बहिन मै पुकारूँ तब आ जाना। क्या कह कर पुकारूँ, कोई सीधा नाम नही है क्या? यह अटपटा नाम तो लिया नही जाता।'

कु० प०—मुझे कुल्हाडी भी कहते है।'

सब वृक्ष—अरे यही है, क्या कुल्हाडी, इसे तो जगल की शत्रु कहा जाता है।'

बेर—'अच्छा, यह नाम तो मै ले सकूँगी।'

कोलाहल

कुल्हाडी—(एक दूर के फेफर से) 'क्यो भाई, जरा तुम्हारे कन्धे पर चढ जाऊँ, यह बगल का बबूल लोगो को बहुत काँटे गडाता है। दुनियाँ कहती है उसे काट दो।'

फेफर—'बहिन मेरी डाले बचाना। चढ जाओ! काट दो।'

(कुल्हाडी चढकर उसे काट देती है, फिर फेफर को भी काटने लगती है।)

फेफर—'यह क्या करती हो, हाय! हाय! अरे बस करो मै मरा।'

(इस तरह कुल्हाडी मसलहत वाले झाडो को बचाकर, बहुत सा जगल काट डालती है है। इसकी खबर जगल मे होती है। वे सब चिन्ता करते है। उनके बाद कुल्हाडी बासो के पास जाती है। और उन्हे काटने के लिये प्रस्तुत वे इस तरह बाते करते पाये जाते है।)

एकला—'यह तो सभी जगल श्री-हत हुआ जा रहा है। जो किसी दिन नन्दन था, आज वह अफ्रीका का 'सहारा' हो चला।'

दूसरा—'क्या करे भाई यह नाश तो देखा नही जाता। इधर यह ग्रीष्म-ऋतु महोदय सुखाये हुये है तिस पर यह रोज का सर्वनाश! भगवान् ही बचावे।'

एकला—'एक उपाय है, इसके हाथो मरने के बजाय स्वय प्राण न दे दे।'

दूसरा—'लो वह आ पहुँची।'

कुल्हाडी—'तुम्हारा नाम क्या है जी?'

एकला—'वश ।'

कुल्हाडी—'तुम्हारा काम क्या है ?'

दूसरा—'हम दुबले-पतले और गरीब है, यहाँ जगल मे हम इस समस्त हरियाले प्रदेश को दूर से देख कर आने वाली आपदा की खबर देते है ।'

कुल्हाडी—'और ?'

एकला—'यदि हमे कोई छेडे तो हम, उसके फास गडा देते है। हमारे तीर शत्रुओ के प्राण ले लेते है, हम श्मशान तक पहुँचा कर छोडते है ।'

कुल्हाडी—'ओ हो ।'

(यह कह कर वह चोट करती है)

एकला—'सद्वश जात हो, करतूत दिखाओ ।'

दूसरा—'धर्म पर चुपचाप प्राण दे दो भगवान देख रहे है ।'

एकला—'तो अन्तिम समय मे आओ मिल ले ।'

(दोनो मिले, दोनो की रगड से आग लग गई,
सग्रहीत सारी लकडियाँ जल गई,
झाड भी जलने लगे। मसलहत
में चर्चा होती है)

आम—'बहिन बडा सकट आया ।'

पीपल—'धोखा विश्वासघात । 'कृष्णाय वासुदेवाय हरये परमात्मने' ।'

शिरीष—'पापी कही के ! 'औषधि जान्हवी तोय कहो' ।'

पलाश—'अरे दादा ! आखिरी वक्त है, लोग औरो के लिये बोलते है, हम अपने लिये बोल ले ।'

शिरीष—'क्या ?'

पलाश—(जोर से) 'रामनाम सत्य है।'

आप—'हाय रे परमेश्वर! यह क्या है?'

इमली—'यह है तुम्हारी उदारता का मधुर फल!'

परिणाम

(सब जगल जल गया। कुरहाडी का बेट भी उसी के साथ जल गया। इसके बाद धीरे-धीरे कुदाली पहुँची। जले हुये किन्तु जडो मे हरियाले झाडो मे जोर की चर्चा फैल गई।)

जामुन—'हाय वह फिर आ पहुँची, अब की वह दूसरा रुप धर कर आई!'

आम—'हे भगवान रक्षा करो!'

पीपल—'ओ भु!'

पलाश—'यह क्या करते हो?'

पीपल—'रक्षा के लिये गायत्री मत्र पढता हूँ।'

पलाश—'थोडा परोपकार और कमालो।'

बबूल—'हमसे भिडने दो, हम जड मे अटकाले निकलना मुश्किल हो जाय।'

कुदाली—'भाई मै तुम्हारे पास आई हूँ।'

इमली—(कुदाली से) 'मर दुष्टे' (सब वृक्षो से) 'इससे कोई न बोलो।'

जामुन—'गिरि जीह मुँह परउ न कीरा।'

कुदाली—'फोरे जोग कपार हमारा, भले कहब दुख रौरे लागा।'

खैर—'अरे चल यहाँ से रौरे की बच्ची।'

आम—'अजी सुनो क्या कहती है ?'

इमली—'तुम्हारा शेष भाग भी, नष्ट हो जाता तो अच्छा था।'

बबूल—'मुझ से भिडो, मेरे पास आओ, तुम्हारे प्राण लूँ।'

पीपल—'पापाय पर पीडनम।'

कुदाली—'हाय मेरी कोई नही सुनता। कोई सहारा नही देता।

(एक कोने मे पडा हुआ डडे का बेंट
बनाकर सबकी झिडकियाँ और
गालियाँ सहते हुए कुदाली
जमीन खोदने लगती है)

पलाश का ठूँट—हुजूरवाला, यह दोरा किस लिये निकला ?'

इमली—'अब यहाँ क्या है, फकत कोयला !'

खैर—(क्रोध से) 'अपने मुँह मे लपेटिये।'

पीपल—'तुम कौन हो जी, तुम्हारा नाम क्या है ?'

कुदाली—'मेरा नाम कुदाली है, मै कुल्हाडी की बहिन हूँ।'

आम—'राम, राम !'

बबूल—'यहाँ क्यो पधारी हो ?'

कुदाली—'मेरी बहिन के द्वारा किये गये अपराधो की क्षमा माँगने। अपराध का शक्ति के अनुसार बदला चुकाने और अपनी बहिन को मना कर वापिस ले जाने।'

पीपल—'साधु साधु ! विष्णवेनम, काँटो मे भी मृदु मंजु सुमन खिलते है।'

इमली—'यो नही कहती कि हमको जड से खोद बहाने !'

बाँस का ठूँट—'या कोई अपनी कौम का कारखाना खोलने के लिये हमारा बिलकुल सफाया करने ?'

कुदाली---'जो चाहो सो कहो भैया, मै अपने काम मे लगी हूँ ।'

पलाश का ठूँठ---'लगी रहो ! तुम्हारे सर की कसम हमारी तकदीर की लालटेन का सब तेल जल चुका ।'

पीपल---'मौन सर्वार्थ साधनम् ।'

(कुदाली सारा जगल खोदती है । खैर बीच ही मे कुदाली के बेट को तोड डालता है । इसके बाद वर्षा होती है । सारे जगल मे नये अकुर फूटते है । सब हर्षित होते है । कुल्हाडी और कुदाली निराश होकर चली जाती है । इसके बाद उगे हुये नये अकुरो में चर्चा शुरू होती है ।)

आम---'अहा श्याम घन बरसे, बरसे ।'

जामुन---'बडे भाग, भाग हमारे फिर जगे । बडी बुरी दशा हुई ।'

शिरीष---'यह दशा किसने की ?'

खैर---'जिसने बेट दिया ।'

बबूल---'और जिसने बेट देने की सम्मति दी ।'

जामुन---'जो हुआ सो हुआ ।'

शिरीष---'और यह सुदिन किसकी कृपा का फल है ?

पलाश---'हमारे आम दादा की ।'

इमली---'हमारे पूर्वजो की ।'

खैर---'परमेश्वर की ।'

पीपल---'घनश्याम शोभा धाम की ।'

पलाश---(चिढकर) 'और उस सत्यानाश की बच्ची का सहारा लेना' (मुँह बना कर) 'घनश्याम शोभा धाम की ।'

आम---'यह दुर्बल और गरीब बाँसो के पवित्र बलिदान का परिणाम है ।'

कला का अनुवाद

पहिली मुकाकात मे मैंने जाना, जैसे देवदूत मिल गया। खूब चर्चा सुन रक्खी थी। कुछ लोग प्रारभ ही से प्रत्येक आदमी को खतरनाक और बेईमान मानकर चलते है। और ज्यो-ज्यो व्यक्ति अपने गुणो से अपनी श्रेष्ठता व्यक्त ही नही, सिद्ध करता जाता है, त्यो-त्यो वे उसकी बेईमानी के सौ नम्बरो मे से एक-दो के क्रम से नम्बर घटाते जाते है और ईमानदारी और गुणज्ञता के खाते, एक-दो ही के, श्रीगणेश प्रारभ करते है। कुछ लोग ऐसे होते है जो प्रत्येक नये आगन्तुक को सौ फीसदी ईमानदार 'मानकर' चलते है और ज्यो-ज्यो वह विश्वासघात या खराबी करता जाय, त्यो-त्यो उस बेई-मानी के खाते नम्बर शुरु करते और ईमानदारी के खाते से नम्बर घटाते जाते है। लोग ही तो ठहरे। पहिले जिक्र किये लोगो को 'बुद्धि-जीवी' और चौकन्ना कहते हैं, जिनके हानि उठाने का उनकी राय-आला मे कभी अन्देशा नही। और दूसरे प्रकार मे वर्णित 'भावना-प्रधान व्यवहारिक मूर्ख' कहे जाते है, जो आदर के साथ आगन्तुक का स्वागत करते है, और उससे अपना मन बिगाडकर तथा अपने से

उसका मन फाडकर, विदा करते है। पहले लोग जीवन का सौदा करते है, जिसमे टोटे की जोखिम न उठानी पडे। दूसरे लोग अपने को आगन्तुक के साथ बाजी पर चढा देते है, और दुखो और सुखो मे परस्परावलम्ब से परिस्थिति बदलने मे हार खा जाते है, तब ईमानदार साथी की तरह अपने और अपने साथी के गुण-दोषो का विवेचन करते है। किन्तु दुनिया तो न जाने किसने दुनिया ही की तरह बनाई है। एक नल मे चार टोटियाँ लगी हो साफ दीखनेवाली, तो एक नल पर सवर्ण और दूसरे पर हरिजन साथ-साथ पानी नही भर सकते है। किन्तु टोटियाँ जरा दूरी पर लगाकर, दोनो को जोडनेवाले नल पर मिट्टी या चूना डाल कर, उन्हे हमारी आँखो से ओझल कर दिया जाय और यदि उसके बीच मे और ओट कर दी जाय, तो फिर मजे मे उस नल के एक छोर पर ब्राह्मण और दूसरे पर चाडाल साथ पानी पी सकते है। शायद लोगो की माँग यह है कि धोखा दो, किन्तु स्पष्ट हमारी जानकारी मे कुछ न करो, वह जो हमे न भाये। किन्तु जिन्हे जीवन को दुकानदारी के सौदे-सट्टे के साथ नही चलाना, किसी कडवाहट मे, गले से नीचे उतारने योग्य मिठास तो मिला सकते है, किन्तु अवसर-लोलुपता से, माँग पर मीठा देकर, अपने साथी का निश्चित मरण नही न्योत सकते। खैर।

हाँ तो, पहिली मुलाकात में वे देवदूत दीखे इसलिये नही कि उन्होने अपने देवदूत होने का विज्ञापन किया हो, इसलिये भी नही कि उनके देवदूत होने के इतने उपकार विश्व पर बिखर रहे हो, कि उन्हे देखकर कोई भी उन्हें देवदूत ही कहता, यह बात भी नही कि उनके कष्ट सहन ने उनके शरीर को ऐसा तेजोमय और पारदर्शक बना दिया था कि आँखे चार होते ही देखने वाले की आँखे आँखो पर ठहरने के बजाय उनके चरणो पर ही ठहरे, और न यह कि अपने

चिन्तन के चरखे पर, हाथ कते, हाथ बुने वे इतने बारीक डोरे निकालते हैं——अनुभव और चिन्तन के ताने-बाने से बने——कि हमारी बुद्धि ललच उठे, अनुभव की रोमावली फूल उठे, और अन्तरिक्ष के अन्धकार मे चलती हुई आखे अन्तश्चेतना और बहि प्रकाश पा जायँ, यह कुछ भी न था। केवल एक बात थी। हृदयवान् मानव मे मुग्ध को मानने और अस्पष्ट पर अपरिमितता का आरोप कर पूजने की जो कमजोरी है, वही प्रथम मिलन मे वन्दनीय कहने की जड मे शायद विद्यमान थी। और इसीलिये जब वे आये, तब मैंने किसी चिन्तक का यह विचार अपने सामने रखा——

"प्रभु आसमान के परे नही, वह तो उम्र के परे निवास करता है।" और धीरे से छाती जुडाली, दूर खडे-खडे ही।

कपाल चौडा था, और आँखे लाँबी-लाँबी। हजामत खूब अच्छी बनी हुई थी, किन्तु आँखो की गभीरता और आँखो की अस्तव्यस्तता कह रही थी कि अपने ध्रुवपथ मे सौदर्य को पनाह देने के लिये इस व्यक्ति के पास अवकाश नही है। कुरता खादी का था, धुला। परन्तु गले के दो बटन खुले हुये थे। कोट मटमैला-सा था, जिसका रग ही वैसा था। उसमे दो जेब बाहर और एक अन्दर था। दर्जी की सुघडता उसमे खर्च हुई थी, किन्तु पहिनने वाले का बेघडापन उसके ऐचक-बेंचा लटकने से व्यक्त हो रहा था। टोपी थी खादी की, ऊन की, चाकलेट रग की, किन्तु हाथ में, सिर पर नही। तेल लगे किन्तु बिखरे और उलझे केश, श्यामल वेश, बातचीत करते समय रुख न मिलाने की आदत, बहुत थोडे बोल, मानो उधार के हो। अथवा काले-काले वदन पर चिपके लाल ओठो की ललाई के घिस जाने का डर हो। बातो मे, गले तक सारा बदन वक्ता की ओर किन्तु आँखे दीवार पर ऊगी घास पर, आविष्कारक की तरह कुछ खोजती-सी। प्रत्येक

शब्द मुस्कराकर बाहर निकले। हाथ मे, पन्तजी का 'पल्लव' और बाय हाथ की अनामिका म, कीमती पत्थर लगी हुई एक सोने की अँगूठी।

चर्चा किसानो पर चल रही थी। और घटना के हर करुण अश पर श्रोता हाँ या ना कहने के बजाय, उसाँस लेते।

कि इतने ही मे पोस्टमैन ने जीने के नीचे से पुकारा–'बाबूजी!'

उनके साथ उनके प्रोफेसर भी थे। वे बिचारे उठे और दौडे। पोस्टमैन से मेरी चिट्ठियाँ ले आये। इनकी आँखो मे भी उत्सुकता जागई।

मैने सोचा, न जिसका मुंह बोले, न आँखे, उसका तो अन्तरग ही बोलता होगा। किन्तु 'होगा' कहकर ठहरने के लिये मानव-मन तैयार जब हो?

उस दिन की बाते जिज्ञासु जैसी थी। मै बोलता गया। वे चुप सुनते रहे।

× × ×

तीन महीने पश्चात्– मै अपनी एम ए की परीक्षा उत्तीर्ण कर चुका था और कनवोकेशन के अवसर पर डिगरी का 'आडम्बर' लेने आया था। वे भी बी ए पास होगये थे और आज के सम्मिलन में मेरे समानधर्मा थे।

बोले वे, मै चुप था। अपने आने का दिन, समय, कारण, ठहरने का मुकाम, उनके साथी, उस मुकाम पर होनेवाली तकलीफ, तकलीफ का कारण, इत्यादि की चर्चा के बाद मुझसे उन्होने मेरे ठहरने का मुकाम पूछा।

मैने कहा—'बैरिस्टर रामनन्दन तिवारी के बँगले पर।' इस बार मै खूब मौन था।

वे फिर बोले। इस बार अपने साथियों की एक-एक कर आलोचना की। वे साथी मेरे अपने भी परिचित थे। आलोचना का पहलू कडवे-से-कडवा और मीठे से मीठा था। हॉ, हर आलोचना की समाप्ति पर यह 'ध्रुपद' किसी न किसी रूप मे जुडा मिलता—'यो आदमी तो बहुत अच्छे है, खूब परिश्रमी या देशभक्त या सेवापरायण या मन के उदार या अपने जनो पर प्राण देने वाले'—जैसा भी प्रसग होता।

मैंने अपने उत्तर के लिये केवल कुछ शब्द चुन रक्खे थे। वे थे—'अच्छा! अच्छा? कहॉ? कब? ओहो! किसने कहा? हाँ, हॉ हरगिज नही, मुझे मालूम नही, मुझे क्या करना है? खूब, ऐसा?'—शब्द और भी थे मगर उनकी जाति यही थी।

× × ×

एक बार वे यूथलीग के सभापति के नाते मिल रहे थे।

मैंने कहा—'बधाई सभापति जी!'

वे बोले—'आप भी मजाक करेंगे?

इसके बाद यूथलीग की चुनाई का किस्सा चला। मीठे शब्द, नम्र लहजा। शरमा-शरमा कर कहने की आदत। जिन-जिन लोगो ने उनके सभापतित्व को सकट मे डालने की कोशिश की, उनकी फेहरिस्त। किन्तु आँखो की पुतलियो पर कुछ चमकता-सा पानी था जो मानो कहता था कि बात कलेजे के भीतरी हिस्से से आ रही है। किन्तु चौकन्नी उदासीनता, एक सजग लापरवाही साथ चल रही थी, जो प्रगट करती थी कि अपने खिलाफ की गई शरारतो के खिलाफ एक बेबसी और उपेक्षा के सिवा इनके पास कुछ नही है।

× × ×

दो साल पश्चात्—

देश मे प्रमुख युद्ध चल रहा था। गरीब और अमीर सब जेल जा रहे थे। हर चीज का अपना मौसम था। जेल जाना भी हमारे राष्ट्र मे इतने बडे पैमाने पर आया कि उसने एक मौसम बना दिया।

एक शहर के बाजार मे लगभग ३०० आदमी गिरफ्तार कोतवाली ले जाये जा रहे थे। तमाशबीनो से भी रहा न जाता था। समाज मे जैसा कि एक नामी लेखक ने लिखा था, ऐसे लोग होते है, जो सभा मे जाये तो सभापति होना चाहे, बारात में जायँ तो स्वय दूल्हा बनने की और श्मशान मे श्मशान के जुलूस मे, उनकी ख्वाहिश होती है कि लोग रोवें तो उनके नाम पर और जलाये या दफनायें तो उन्ही को। दूसरे कुछ लोगो को कुछ नई चीज जानने का शौक होता है, चाहे वह जेल-जीवन ही क्यो न हो, यदि वह बिना नैतिक गुनाह किये मिले। तीसरे होते है जो सोचते है कि बिना व्यवहारिक सेवा किये, यदि देश-भक्तो के आस-पास पडी रस्सी को अपने हाथ मे बाँध लेनें से सीधे मातृभूमि के उद्धारक का पुण्य मिलता हो तो क्यो छोडा जाय। चौथे अपने दुकानो और अटारियो पर होते है। वे देखते है कि धन और कीर्ति की दुकानदारी को अधिक सफलता से चलाये जाने के लिये भविष्य मे जेल-जीवन एक रामबाण नुसखा होगा। वे अटारियो से उतर कर जेलखाने की हथकडियाँ उसी तरह पहिन लेते है, जैसे किसी बडे आदमी की शादी मे अपना सबसे अधिक बडप्पन जताने के लिये हीरो का हार या कीमती रिस्टवाच पहिनी जाती है। छठवे वे होते है जो सोचते है कि आज तक तो देशभक्ति का जोत जोता, आज जेल न गये तो लोग हँसेंगे, अत चल पडे

कानून-भग के रूप मे आराम-भग की ओर। इनमे कुछ गरीब वे भी होते है, जो जेल मे दोनो जून भोजन पा लेते है, किन्तु बाहर सस्थाओ और नेताओ की पूरी गुलामी करने के बाद भी, उपवासो के वेतन पर, देशभक्ति की ऐसी प्रथा जारी रखते हे । किन्तु वे नक्षत्र, देशभक्ति के वे सितारे होते है जिनको तपस्याओ के आस-पास ये, गरजमन्द और अलगर्ज उपग्रह लटकते रहते है । उस समय इतने जोर से गिरफ्तारियाँ थी कि सत्याग्रह के दिनो खादी पहिनकर नागपुर का टिकट लेना नागपुर के अजनी जेल के सन्तरी को अपने आने के लिये दरवाजा खुला रखने के लिये न्यौता भेजना था । मौसम ऐसा अच्छा था कि विवाहो के बाजे वाले अपने बिगुल और अपने ढोलो पर—"आजादी के दीवानो का दीवाना भगतसिह" गावे, प्रायमरी स्कूल की प्रथम श्रेणियो मे बच्चे एकत्र होकर "झण्डा ऊचा रहे हमारा" का खेल खेले, मजिस्ट्रेट लोग, समाज के उत्साह से घबराकर, उनकी नजरो से गिर जाने के डर से जेलो मे देशभक्तो के मुकदमें करे, व्यापारी विलायती कपडा स्वदेशी बता कर बेचे, रेलवे के बाबू गाँधी-टोपी पहने, बिना टिकट आवारो को बिना कुछ कहे और बिना कुछ लिये बाहर निकल जाने दे, पुलिस वाले साहब के सामने हथकडी बाँधे और अकेला पाकर कैदी को सलाम करे, ताँगेवाले चार आने की मजदूरी मे सफेद टोपी वालो से दो आने पाकर चुप रह जायँ। फूलकी मालायें शौकीनो को मिलनी मुश्किल हो गई थी । वे देशभक्तो से जब बचे ! ठीक इसी मौसम मे जब कि मै एक विश्वविद्यालय मे प्रोफेसर था, मैने एक मासिक-पत्र उठाकर पढा । मुखपृष्ठ पर एक कविता स्फुलिंग शीर्षक थी । उनमे मरनेवाले रणवीरो का गान था । नीचे नाम था—'अमरचन्द्र श्रीवास्तव' कविता, क्या थी मानो—शब्दो ने भाषा का सारा तेज पा लिया था । उसमे आग थी,

अगारे थे, मौत थी, लय थी। एक ही महीने पश्चात् मैंने फिर एक समाचार पढा लिखा था, उक्त कविता छापने के कारण उस मासिक-पत्र से 'दो हजार की जमानत ली गई'। इस समय मेरे मन मे अपने 'तरुणमित्र' के प्रति फिर अनुराग जागा। ये वे ही थे। मैंने ढूँढा नही कि वे कहाँ है और क्या करते है। पक्तियो मे अगारे बरस रहे हो, वह उस मौसम मे कहाँ हो सकता है, मोसम के फलो को बेचने वाले कुँजडे भी कह सकते थे।

इस घटना के तीसरे रोज मुझे एक निमत्रण-पत्र मिला। वह दीवानचन्द्रजी श्रीवास्तव का था। उनके पुत्र अमरचन्द्र श्रीवास्तव एम० ए० की शादी का आमत्रण था। एक डिपुटी साहेब के यहाँ बारात जाने वाली थी।

मैंने उसी डाक के अखबारो पर नजर डाली। भिन्न-भिन्न शीर्षको के नीचे जेल जाने और सजा पानेवालो के नाम और गुणो (अको) से कालम भरे हुये थे। मै फिर उठा, और वह मासिक-पत्र उठा लाया जिसमे कविता छपी थी। फिर आमत्रण-पत्र पढा। फिर अखबार को देखा। एक विचित्र रामायण बन रही थी जिसमें काण्ड पर काण्ड अलग-अलग नजर आ रहे थे। मैंने सोचा, हो-न-हो यह शादी उक्त राष्ट्रीय कवि की मर्जी के खिलाफ हो रही होगी। या फिर वह कवि कोई और होगा। बारात मानिकपुर से खागा जा रही थी। प्रयाग से मै भी साथ हो लिया। स्टेशन पर पहुँचते ही अमरचन्द्र मिले। बडे प्रेम से! उनके हाथ मे कटार थी, अगुलियो मे अँगूठियाँ, हाथो से मेंहदी, ओठो पर पान की लाली, बदन से इत्र की बू आ रही थी ओर चवँर और पँखे नाइयो के पास [illegible]ीख पडे। मंने मानो थाह सी लेते हुये पणामो के आपस मे बाँधने-खोलने के

बाद 'स्फुलिंग' रचना पर अमरचन्द्र को बधाई दी। वे बोले—'आपकी कृपा है। टूटा-फूटा लिख लेता हूँ। यों मुझे आता ही क्या है।'

मैने कहा—'वाह क्या हृदय पाया है। कविता मानो वह उभाड है, जो रोके न रुके। थमाये न थमे।'

वे बोले—'आपका बिस्तरा कहाँ है? यही इसी डिब्बे में नीचे वाले गद्दे पर आ जाइये।'

मै आ गया।

विवाह मे मै दो दिन रहा। रोज अखबार देखता। जहाँ शादी हो रही थी, उस गाँव में भी पुलिस ने उसी दिन 'लाठी-चार्ज' किया था। किन्तु शादी बहुत धीरे-धीरे होती चली जा रही थी और औरतो के गीतो और मर्दो के मजाको मे अमरचन्द्र ऐसा रस ले रहे थे, मानो वे किसी और लोक के नही सिर्फ इसी लोक के जीव है। तीसरे दिन मै चल दिया। रह-रहकर अमरचन्द्र से मै कुछ पूछना चाहता था, किन्तु रग मे भग न हो इस भय से मैने नही पूछा।

मैने वकालात पास करली थी और एक रियासत मे आगया था। क्योकि हम यही के रहने वाले है, अत वही वकालत करना था। एक दिन कर्म-धर्म-सयोग से मुझे नजदीक की रियासत में एक डाके के मुकदमे में मुलजिमो की ओर से जाना पडा। उन दिनो भी वही मासिक-पत्र मेरे हाथ मे था और उसमे 'सच्चा कौन?' इस शीर्षक की कहानी छपी हुई थी। इसीलिये मुझे पढने का लालच हुआ क्योकि वह कहानी अमरचन्द्र की लिखी हुई थी। बहुत मस्त कहानी, बडी बोलती सी भाषा, बडा गयन्दगामी प्रवाह, कहानी में मातृभूमि के लिये सूली पाने वाले एक तरुण का सजीव चित्रण था। आँखो मे आँसू आगये।

अदालत मे सरकारी गवाह एक के बाद एक आ रहे थे। मै और मेरे साथी चार और उनसे जिरह कर रहे थे। मालूम हुआ कि मामला डाके का न होकर षडयन्त्र का है। मैंने खूब सावधानी से जिरह करना शुरू किया।

जब अपने गवाह न० ५ को बुलाने के लिये सरकारी वकील ने पुलिस के डिस्ट्रिक्ट सुपरिंटेन्डेन्ट से कहा, तब मैंने देखा कि वे है 'अमरचन्द्र श्रीवास्तव'। वे सिर पर ग्रेजुएट की फूंदेदार टोपी लगाये हुये थे। मैने देखा वे खूब सावधान और निडर थे और कह रहे थे षडयन्त्र बुरी चीज है, वे षडयन्त्रकारियो को जानते है उनके पास पिस्तौल देखी है, वे परम राजभक्त है, उनके पिता और उनके ससुर भी राजभक्त है, वे एक कालेज मे अध्यापक है, अमुक अभियुक्त उनके यहाँ आता-जाता था, उन्होने उसे मना भी किया, उन्होंने पुलिस को सूचना दी थी क्योकि उन्हे पता चल गया था कि अभियुक्त गुनाह करने पर उतारू है। मैंने जिरह शुरू की और उन्हें जवाब देने मे जरा भी तकलीफ नही हुई। न आँखो में वह शर्म थी, न मुँह पर वह उदासीनता, न अपने प्रति वह लापरवाही। मै उनसे सब बाते ईमान से कहलवाने के लिये उनके हाथ मे गीता दे ही रहा था कि मेरे पीछे से तड से एक गोली चली और अमरचन्द्र के सीने मे जा लगी।

उनका तडपता हुआ शरीर पुलिस ने उठाकर चट से मोटर पर रक्खा और वे शायद अस्पताल चले गये।

पिस्तौल छोडने वाले युवक ने आत्मसमर्पण कर दिया। वह था उन्ही का चचेरा भाई गोपालचन्द्र, जो दर्शको में खडा मुकदमा सुन रहा था।

उसी दिन शाम को मदनमोहन पार्क में श्री अमरचन्द्रजी के निधन पर शोक-सभा हुई। तकदीर की बात कि मुझे भी वही सभापति होना पड़ा। जब स्वाभाविक सहानुभूतिवाले और कृत्रिम आँसुओवाले दोनो प्रकार के वक्ता बोल चुके, तब मैंने सभा समाप्त करते हुये एक वाक्य यह भी कहा—'कला जीवन से अपना अनुवाद माँगती है। जो दे सकते है, उन्ही की जीवन-छाया, इतिहास के नाम से तिथि-ग्रन्थो मे और प्रेरणा के नाम से कृति-ग्रन्थो मे पड़ी रह जाती है।'